जब निमाड़ गाता है....

[निमाड़ी लोक-गीतों का सांस्कृतिक संकलन]

रामनारायण उपाध्याय

भूमिका

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल



उषा प्रकाशन गृह

४६, यशवंतगंज, इन्दौर

प्रथम संस्करण

स्वातंत्र्य-दिवस : १९५८



मूल्य

चार रुपये



: मुद्रक :

प्रभातसिंह उ. इनामदार
पब्लिका प्रिन्टरी
वलासण, जिला : खेड़ा,
(गुजरात)

: प्रकाशक :

उषा प्रकाशन गृह के लिये
मगनलाल जैन
४६, यशवंतगंज,
इन्दौर

दो शब्द

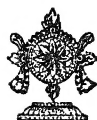
इससे पूर्व लोक-गीतों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और उनका स्वागत भी हुआ है। उन्हीं में एक नवीन संकलन की वृद्धि करते हुए हमें हर्ष होता है।

आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक के गीत पाठकों के समक्ष लोक-जीवन की अनुकूलताओं एवं विषमताओं का तथा उसके आसपास फैले हुए प्रकृति-सौन्दर्य का वातावरण उपस्थित करके उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लेंगे और पाठकों को उनमें अपनत्व की अनुभूति होगी। पुस्तक की विशेषताओं एवं त्रुटियों का निर्णय तो विद्वान आलोचक और पाठक ही करेंगे। यदि उन्होंने इसे अपनाया तो भविष्य में ऐसे ही अन्य संकलन प्रस्तुत करने के लिये हम प्रयत्नशील रहेंगे।

—प्रकाशक

लोक-गीत धरती के गीत हैं, धरती के बेटे-बेटियों के गीत हैं। अपने भाग्य को अपने हाथ में लेकर जीनेवाला किसान हल की मूठ पकड़कर जीवन के, शृङ्गार के, समृद्धि के, संघर्ष के और विजय के गीत गाता है। इन लोक-गीतों में हमारा लोक जीवन अपनी समस्त सुन्दरता और शक्ति के साथ मुखर हो उठता है। इन लोक गीतों के साथ धरती गाती है, आसमान गाता है, चाँद-तारे गाते हैं, वन,-पर्वत, नदी, नद गाते हैं। प्रकृति के सारे तत्त्व गाते हैं। पूरा ग्रामीण समाज गा उठता है।

—श्रीकृष्णदास



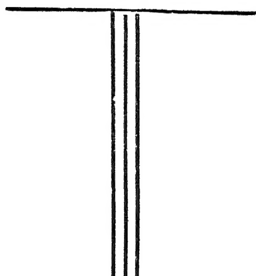
स्नेहमयी माँ को सादर....
जिससे मुझे यह प्रेरणा मिली

रामनारायण उपाध्याय

अ नु क्र म



जब निमाड़ गाता है



निमाड़ी लोक-गीत

[एक परिचय]

स्वरूप

हिन्दी का साहित्य सम्पूर्णतः लोक-भाषाओं का साहित्य है और जनपद की भाषाएँ तो साहित्य की साक्षात् कामधेनु है। इस दृष्टि से निमाड़ी लोक-साहित्य भी अत्यंत समृद्ध रहा है। निमाड़ी लोक-साहित्य मे सब से अधिक संख्या गीतों की है। भाव, भाषा, उपमा और अलंकार, सभी दृष्टियों से ये गीत अत्यन्त ही समृद्ध रहे है। इन गीतो की जो सबसे बड़ी विशेषता है वह यह कि ये मानवीय तत्त्वों से भरपूर हैं। इन में देवी-देवताओं के माध्यम से भी मानव-जीवन की कहानी कही गई है। चाहे सूर्य हो, या ब्रह्मा-सावित्री, वे सब यहाँ मानवीय स्वरूप लेकर आते और पारिवारिक प्रतीकों के सहारे समाज-जीवन को समृद्ध बनाने में अपना योगदान देते हैं।

निमाड़ी लोक-जीवन की तरह ही ये गीत भी भावना-प्रधान रहे हैं। इनमें मानव-मन की सुकोमल भावनाओं का दर्शन किया जा सकता है। इनके पीछे एक व्यवस्थित परम्परा है। एक ओर यदि इनके विवाह के गीतों में कन्या की सगाई से लेकर विवाह तक के प्रत्येक क्षण का वर्णन है, तो दूसरी ओर गनगौर के गीतों में किशोर, बालिका से लगाकर वयस्क ग्राम-वधू होने तक की मनोभावना का अंकन है। यूं गनगौर गीतों को यदि हम नारी-

जीवन का सुमधुर गीति-काव्य कहें तो विवाह के गीतों को हमारे सामाजिक जीवन की मांगलिक अभिव्यक्ति कह सकते हैं। सब मिलाकर इनमें हमारे पारिवारिक जीवन का ऐसा विराट दर्शन है कि उसे पढ़कर आज भी मुग्ध रह जाना पड़ता है।

प्रवृति

स्वभावतः निमाड़ी के कुछ गीत स्त्री-प्रवृत्ति के रहे हैं और कुछ पुरुष-प्रवृत्ति के। गनगौर, विवाह, व्रत-त्यौहारों, तीर्थों तथा ऋतुओं के गीत स्त्री-प्रवृत्ति के हैं, और ये सब स्त्रियों के द्वारा सामूहिक रूप से गाये जाते हैं। गाते समय इनकी प्रत्येक पंक्ति को भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं के नाम से पाँच बार दुहराया जाता है। दुहराये जाने से गीत के बीच आनेवाली नवागन्तुक महिलाएँ भी उससे परिचित होती चलती हैं, और यों वह सबको कण्ठस्थ होता जाता है। प्रत्येक संस्कार के अवसर पर गाने और दुहराये जाने से ये गीत अभी तक लुप्त नहीं हो पाये और एक दिये से दूसरे दिये के जलने की तरह, एक मुँह से दूसरे मुँह तक पीढ़ी दर पीढ़ी निरन्तर गतिमान रहे हैं।

होली, अकाल, रासलीला, तथा भगवान कृष्ण से सम्बन्धित अन्य धार्मिक गीत पुरुष-प्रवृत्ति के रहे हैं, और ये झांझ और मृदंग पर पुरुषों के द्वारा सामूहिक रूप से गाये जाते हैं।

स्त्रियों के गीत जहाँ बिना किसी वाद्य के प्रवाहमान रहे हैं, वहाँ पुरुषों के गीत वाद्य के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाते।

यह एक आश्चर्य की बात है कि स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीत जहां आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान हैं, वहाँ पुरुषों के द्वारा गाये जानेवाले गीतों में काफी अन्तर आ गया है

और उनके कुछ पदों का लोप होता जा रहा है। यह पुरुष के गैर-जिम्मेवार और लापरवाह स्वभाव का सबसे बड़ा उदाहरण है।

मान्यताएँ

इन गीतों से हमारी सामाजिक मान्यताओं का भी पता चलता है। हमारे लिये बच्चे का जन्म भले ही एक साधारण-सी घटना हो, लेकिन लोक-गीतों की दुनिया में जब किसी के यहाँ बच्चे का जन्म होता है, तो धरती पर एक 'नये-इन्सान' के आने की तरह उसका स्वागत किया जाता है। रूप की दृष्टि से उसकी कामदेव से तुलना की जाती है, और सारे पारिवारिक जनों की ओर से भी इस दिन खुशी मनाई जाती है। श्वसुर गड़ा हुआ धन निकाल कर बँटवाते हैं, ज्येष्ठ समस्त नागरिक-जनों को कपड़ों की भेट देते हैं, देवर खारक बँटवाते हैं, ननदोई मांगलिक वाद्य बजवाते हैं, और तब पति अपनी पत्नी को दिये गये वचनों का पालन करते हुए, उसे मनचाहे उपहारों से ढँक देते हैं। उधर माँ की ओर से भी समस्त सामाजिक जनों से अपने यहाँ पधारने की प्रार्थना की जाती है। ज्योतिषी से कहा जाता है कि, 'हे ज्योतिषी भाई! आओ और मेरे बच्चे की भाग्य-रेखा देखो।' सोनी से कहा जाता है कि, 'हे सोनी भाई! आओ और मेरे बच्चे के लिये गहने बनाकर लाओ।' और तब बजाज बागा लेकर, दर्जी झगा और टोपी लेकर, और भाई अपनी बहिन के लिये एक स्नेह से निर्मित पीले वस्त्र की भेंट लेकर आते हैं। इस तरह एक के सुख को सबका सुख बना देने की क्षमता इन गीतों में है।

यही स्थिति विवाह-गीतों की भी है। इनमें हमारे पारिवारिक जीवन की उदात्त कल्पनाएँ सँजोई हुई हैं। विवाह के अवसर पर सबसे पूर्व श्वसुर, पिता, ज्येष्ठ, भाई और उस कोख को बधाई

दी जाती है जिसके कारण यह शुभ दिन देखने को मिला, अ
तब सास नारियल से भरे थाल से और माँ मोतियों से उस
स्वागत करती है तथा जेठानी अपनी शुभ कामनाओं से और दे
रानी अपना घूँघट खोचकर उसे सम्मान प्रदान करती है। साथ
उस माँ की कोख की ओर से भी उसका स्वागत किया जाता
जिसने हीरे और मोतियों की तरह पुत्र और कन्या को जन्म दिया
और इसके बाद उसके यहाँ दशरथ की तरह पि
कौशल्या की तरह माँ, राम-लक्ष्मण की तरह भाई और सुभद्रा
तरह बहिन पधारती है। इनमें अपने यहाँ आने वाले मेहमानों
दूध से पाँव पखारे जाते हैं और केशर एवम् चन्दन से उन
स्वागत किया जाता है।

इनमें, स्त्रियों के द्वारा गीत की कड़ियों के साथ, हर सुहा
प्रभात एवम् सन्ध्या का स्वागत किया जाता है और दूल्हे
राजा की तरह प्रतिष्ठा दी जाती है। ठीक राजा की तरह उस
मान-सम्मान किया जाता है। चार सुन्दर स्त्रियों के द्वारा उसे प्र
दिन स्नान कराया जाता है, उबटन लगाये जाते हैं, और गीतों
उसका निरन्तर अभिषेक किया जाता है। उम्र में छोटा होने पर
सारे पारिवारिक जनों की ओर से उसे प्रतिष्ठा दी जाती है, अ
एक राजा की ही तरह उसे सामाजिक नियमों में भी छूट
जाती है। सचमुच एक नौजवान दूल्हे को सबसे आगे और सब
उच्च स्थान देकर जब वयोवृद्ध उसके पीछे चलते हैं, तो उस
"दूल्हा-राजा" नाम सार्थक हो उठता है। यों क्षणिक आनन्द
चिरकाल का बना देने और साधारण से कार्य को उदात्त मांगलि
स्वरूप देने का श्रेय भी इन्हें ही है।

इन गीतों की सीमा महज धरती तक ही सीमित नहीं
वरन् इनका प्रवेश सुदूर स्वर्ग तक रहा है। जिस त

महाराजा रघु के राज्यकाल में उनके रथ सीधे पृथ्वी से स्वर्ग तक आया-जाया करते थे, उसी तरह इन गीतों में सूर्य के घोड़ों का प्रवेश रघु के आँगन तक में पाया जाता है। साथ ही इनमें अपने बच्चे के विवाह में उपस्थित होने के लिये सुदूर स्वर्गस्थित पूर्वजों के पास सन्देश भेजने की भी व्यवस्था है।

सन्देश भेजने के लिये इनमें हंस और गीध का प्रयोग किया गया है। साथ ही, इनमें निम्न पक्षियों का प्रयोग भी पाया जाता है—जैसे, शुभ कार्यों के अवसर पर "कोयल शब्द सुणाविया" कोयल शब्द सुनाती है। सूर्योदय के समय "शुक्र भान कुकडो सार बोलऽ" सुहावना मुर्गा लगातार बोलता है। ऐश्वर्य-प्रदर्शन के लिये "तुम्हारा रंगमहल पर मोर बोलऽ" तुम्हारे रंगमहल पर मोर बोलते रहें, इत्यादि।

प्रयोग

इन गीतों में कुछ अत्यन्त ही नवीन और मौलिक प्रयोग सँजोये हुए हैं; जैसे— एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिये हमारे यहाँ रास्तों का कोई नाम नहीं होता, लेकिन जब एक स्त्री अपने मैके जाती है तो इन गीतों में उसके मैके जाने के रास्ते का नाम भी है—"पियरारी बाट"!

इसी तरह जब किसी स्त्री का पति दूसरा विवाह रचाना चाहता है, तो उसके लिये वह वर्ष 'सौत का संकट' बनकर आता है। इसीलिये लोक-गीतों की दुनिया में उस वर्ष का नाम भी है "लऊक की साल"।

इनमें, वृक्षों में लगने वाले फलों के माध्यम से भी महीनों को पहिचानने का एक सुन्दर प्रयोग है, जैसे—'लीम मंऽ लीमोलई लागी श्रावण महिनो आयो जी'—नीम मे निबोली लग गई हैं, सावन महीना आ गया।

उपमाएँ

ये गीत उपमाओं से भी खाली नहीं हैं, और इनमें हमारे पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित अत्यन्त ही मनोहर कल्पनाएं संजोई गई हैं। जैसे, इनमें बहिन की तुलना आम्रवन की कोयल से की गई है और कन्या की तुलना अपने आँगन के एक कोने में खड़े केल के वृक्ष, मण्डप पर छाई बेल, और नीले व गीले बांस की बांसुरी से करते हुए कहा गया है कि—जिस तरह नीले व गीले बांस की बांसुरी को बजना ही होता है, उसी तरह अत्यन्त ही लाड़-प्यार से पली अपने भाई की सुकुमार बहिन को भी ससुराल जाना ही होगा। वैसे बांस वंश-वृद्धि का प्रतीक माना गया है। इसी तरह दूल्हे की तुलना अद्रक के पान से की गई है जो देखने में तो सुहावने लगते हैं लेकिन अपने लिये कन्या का दान माँगते हैं।

पारिवारिक स्वभाव-चित्रण की दृष्टि से इनमें मानसरोवर की तरह पिता, भरे-पूरे भण्डार की तरह ससुर, बहती हुई गंगा की तरह माँ, भरी-पूरी बावड़ी की तरह सास, श्रावण की हरियाली तीज की तरह बहिन, कड़कती बिजली की तरह ननद, गोकुल के कन्हैया की तरह भाई, बिच्छू की तरह देवर, गुलाब के फूल की तरह बच्चा, झपकते हुए दीये की तरह जंवाई, केल के वृक्ष की तरह कन्या, बांझ ईख की तरह दासी, पीला ओढ़े हुए स्त्री की तरह सौत और उगते हुए सूर्य की तरह स्वामी है।

इसके अलावा लड़के के लिये "लाड़क छोरो" और लड़की के लिये "मांडण बेटी" शब्द कितने सुन्दर बन पड़े हैं।

नखशिख वर्णन की दृष्टि से भी ये गीत किसीसे पीछे नहीं हैं। इनमें एक बार यदि मूंग की फलियों की तरह अंगुली, सूर्य के

तेज की तरह सिर, सुग्गे की चोंच की तरह नाक, नीबू की फाँक की तरह आँखें, अनार के दाने की तरह दाँत, हिंगुल की रेख की तरह ओंठ, चम्पे की टहनी की तरह हाथ और केल के खम्भ की तरह पाँव हैं, तो दूसरी ओर शुक्र के तारे की टीकी, बदली की चूनर, बिजली की मगजी, नौलख तारों की अंगिया जिसके अग्रभाग में सूर्य और चन्द्र टंके हों, तथा वासुकी नाग की वेणी बनवाने का आग्रह है।

इन गीतों में निम्न-लिखित आभूषणों का जिक्र भी मिलता है—यथा, हाथीदाँत को चूड़िलो, नौ-सर्यो हार, हीरा जड़्यो मूँदड़ो, कोसम्बी पाग, ऊदो चूड़ो, पायन पींजन, हाथन गजरा, नैनन कजरा, नाक नथली, कान करणफूल, कमर कंदोरा, भुज बाजूबन्द ।

वस्त्राभूषण की दृष्टि से यदि एक ओर इनमें "आड़ी रुलन्तो घाघरो" और "कड़ी रुलन्ता केश," याने एड़ी तक झूलते हुए लहंगे और कमर तक झूलते हुए लम्बे केशों का जिक्र है, तो दूसरी ओर "हलदी भर्यो अंग," "पाटी मंऽ गुलाल," "चोटी मंऽ अतर" जैसे शृङ्गार-उपादानों का भी कुछ जिक्र है।

ये गीत मनुष्य के प्रति मंगल-कामना से ओत-प्रोत रहे हैं। इसीलिये इनमें, चाहे गणेश की पूजा हो या विवाह का आमन्त्रण, उन्हें सदा मोतियों के थाल से बधाया जाता है। इनमें दूल्हा सदा सवा घड़े दूध से स्नान करता है, और चन्दन के किवाड़ से बनी रनु की कोठरी से अगर की गन्ध आती है। इनमें मक्खन की पाल से बँधे दूध के तालाब होते हैं जहाँ रेशम की डोर से बँधे सोने और रूपे के घड़े से सुन्दरियाँ पानी भरती हैं।

ये गीत हमारी युग युग से पोषित संस्कृति के परिचायक रहे हैं। इसीसे इनमें उस माँ की ममता है जो बच्चे को गोद खिलाती,

पालना झुलाती और दूध पिलाकर बड़ा करती है। उस पत्नी का प्यार है जो झारी भरकर लाती, थाल परोसती और पान का बीड़ा संजोकर पुरुष की सार-सँभाल किये रहती है। और उस बहिन का स्नेह है जो साती पुरोती, आरती संजोती और मोतियों के चौक पुरोकर अपने भाई का मंगल न्योतती आई है।

इनमें, जब किसी के यहां भोज होता है तो गंगा की तरह मेहमानों का स्वागत किया जाता है, और किसी के तीर्थ जाने पर उसके वहां से लौट कर आने तक उसके घर के आंगन में गीतों की गंगा बहती रहती है।

ये गीत शक्ति के अक्षय स्रोत रहे हैं। इनमें हमारे गार्हस्थ्य जीवन के भी मर्वांगपूर्ण सुन्दर चित्र संजोये हुए हैं। देखिये एक स्त्री से जब अपने लिये वरदान मांगने को कहा जाता है, तो वह धन और सम्पत्ति नहीं मांगती वरन् "दूध, पूत और अहात" की ही माँग करती है। साथ ही, वह एक हठ करने वाला बच्चा, एक वीर भाई, बहू के हाथ की रसोई, बेटी के हाथ का परोसा, खेत में घुटने इतना खाद, घर में पहुँचे इतना दूध-घी, तथा अपने लड़के को कमाई और पति का राज्य चाहती है। साथ ही एक किसान जब खेत में हल चलाता है, या स्त्री घर में चक्की चलाती है, तो ये गीत हल और चक्की की मूठ पकड़कर उनका संग निबाहते आये है।

इन गीतों से निमाड़ी-स्वभाव का भी पता चलता है। इनमें बार बार निमाड़ी-जन के लिये "भोला मानवई" और "भोला धणियेर" शब्द का प्रयोग किया गया है। साथ ही समूचे निमाड़ को भी भोलई निमाड़ कहा गया है। इससे, यहां के भोले स्वभाव का सहज अन्दाज किया जा सकता है। इन गीतों में एक ओर

यदि सुदूर राजस्थान के हाडा वंश का जिक्र है, तो दूसरी ओर सुदूर गुजरात से आने वाली रनु का भी जिक्र है। इनमें एक ओर यदि उत्तर भारत की गंगा और यमुना का जल हिलोरें लेता है, तो दूसरी ओर दक्षिण की कावेरी का जल भी उसमें आ मिला है। इस तरह ये गीत उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत की एकता के भी प्रतीक हैं।

अन्त में दो शब्द इस पुस्तक के बारे में भी। ये गीत मेरे मन के मीत रहे हैं। चाहे मैं काम कर रहा होऊँ, भोजन कर रहा होऊँ या किसी पुस्तक को पढ़ने में संलग्न होऊँ, ये कभी-कभी चुपके से मेरे कानों के पास आकर गुनगुनाये हैं कि, 'देखो! मैं जा रहा हूँ। मेरी यात्रा का कोई अन्त और छोर नहीं है; फिर कब मिलना होगा इसका भी कोई निश्चय नहीं। यदि मिलना है तो अभी मिल लो।' और तब मैं अपने हाथ का काम छोड़कर इनसे मिला हूँ। और उसी "मिलन की याद" इस पुस्तक में अंकित है।

इन्होंने कभी मुझे चुपके से चार मित्रों में से बुलाकर तो कभी बड़ी रात गये झकझोर कर उठाकर अपने सुख-दुःख की गाथायें सुनाई हैं। इन्होंने कभी मुझे अपने यहाँ पुत्र-जन्म के उत्सव में बुलाया, तो कभी विवाह में आने का रंगीन निमन्त्रण दिया है। कभी किसी उत्सव में शामिल होने के लिये मुझे अपने घर से खींच लिया, तो कभी बच्चों के साथ बच्चा बनकर खेलने के लिये बाध्य किया है। इन्होंने मुझसे कभी कुछ भी नहीं छिपाया, यहाँ तक कि ये अपने शयन-कक्ष की रंगीन से रंगीन बात भी मुझे बताने में नहीं शर्माये हैं।

ये गीत क्या हैं, मनोभावनाओं का सुकोमल इतिहास है।

मैंने इस संग्रह में प्रत्येक गीत को प्रारंभिक परिचय के साथ स्वतन्त्र स्थान दिया है। जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है और वह अपने लिये विशिष्ट स्थान चाहता है, उसी

तरह प्रत्येक गीत का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और वह अपने लिये विशिष्ट स्थान चाहता है। मैंने इसी क्रम से इन्हें संजोया है।

कुछ अध्यायों के प्रारंभ में मैंने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचार दिये हैं। कहीं-कहीं यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है कि किसतरह लोकगीतों की भावनाओं और गुरुदेव के विचारों में अद्भुत साम्य रहा है। इससे हिन्दी साहित्य और लोक साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में सुविधा होगी।

एक बात और है, आज जो लोकगीत बजाय शोध, अध्ययन और जीवन में प्रेरणा ग्रहण करने के, महज रेडियो पर गाने और किसी के सम्मान में पढ़े जाने जैसी सस्ती ख्याति के विषय बनते जा रहे हैं, यही इनके मार्ग का सबसे बड़ा खतरा है। वास्तव में ये गीत लोक-जीवन की अमूल्य निधि हैं और इनका वास्तविक स्थान जीवन की ज़मीन पर है। अतएव मैं श्री जगदीशचन्द्र माथुर के शब्दों में कहना चाहूँगा कि—"लोक-कला को नगर और सभ्य कही जाने वाली जनता के सामने रख देना एक बात है और जन-जीवन के बीच में उन्हीं की सम्पूर्ण अभिव्यंजना का आयोजन करना दूसरी बात। गाँव से नगरों की ओर दौलत भी खिंची; उसकी गोदी के लाल भी खिंचे; उसकी धरती के गीत भी उड़े; क्या यह नहीं हो सकता कि उन गीतों की पौध अब उसकी धरती में जमे, फले-फूले और लोक-जीवन को आनन्दरस से सराबोर करे।"

अन्त में मैं लोक-साहित्य एवं पुरातत्त्व के विद्वान श्री डॉक्टर वासुदेवशरणजी अग्रवाल के प्रति हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की भूमिका लिखकर लोक-साहित्य के कार्य को व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान की है।

—रामनारायण उपाध्याय

भूमिका

इस संग्रह में संकलित इतने सरस और भावपूर्ण गीतों की जन्मस्थली होने के कारण सचमुच निमाड़ की भूमि लोक-साहित्य की सौभाग्यशीला धात्री कही जा सकती है। भारतीय आकाश नाना प्रकार की दैवी और मानुषी ध्वनियों के जन्म का ब्राह्म-सरोवर है। ऋषियों के वैदिक गीत, वैदिक साम जिस अनादि–अनन्त अक्षर–तत्व का गान करते हैं उसीके एक परिमित क्षर अंश का छन्दित मूर्त्त रूप इन लोक–गीतों में है जो मानवीय कंठों से उसी दिव्य उल्लास के आनन्दपूर्ण भाव लिये हुए क्षेत्र-क्षेत्र में प्रस्फुटित हुए हैं। आनन्द के अतुलित रस–प्रवाह की दृष्टि से लोक-गीतों की महिमा का अनुभव ही किया जा सकता है, उनकी प्रशंसा में पर्याप्त रूप से कहना कठिन है। मानव–हृदय का जो आनन्द देश और काल में सदा सकुशल बना रहता है, जिसकी जन्मभूमि अतीत, वर्तमान और भविष्य में अमृत–रस से प्रोक्षित है, जो वृक्षों पर निवास करने वाले सायं प्रातः मुखर विहगों के कलरव में निनादित है, उसी आनन्द का शब्दमय रूप हमारे लोक-गीत हैं, जो भारतीय जीवन के विराट आकाश या परम व्योम मे कई सहस्र वर्षों से आपूरित रहे हैं। उनके वैखरी रूप का भले ही कालक्रम से परिवर्त्तन होता रहा हो उनकी आत्मा या आनन्दमयी भावना सदा एकरस है।

पर्वत के शिखरों पर, नदी द्रोणियों में, अरण्य, ग्राम और नगरों के सन्निवेशों में सर्वत्र लोक-गीतों का तानाबाना पुरा हुआ है। उनके अंचल में भारतीय जीवन के उद्दाम आरण्य मनोभावों को एवं संस्कृति के छन्द में ढले हुए सुकुमार सौम्य भावों को भी समान रूप से प्रश्रय मिला है। लोक-गीतों का यह विपुल महा-काव्य या राष्ट्रव्यापिनी संहिता इस अर्वाचीन युग मे अपनी समस्त शक्ति और सौन्दर्य के साथ हमारे मानस-भवन में प्रत्यक्ष होती जा रही है। इसके रस से हम सब कृतकृत्यता का अनुभव कर रहे हैं। ऐसे प्रत्येक संग्रह से नूतन स्फूर्ति और आनन्द का अनुभव प्राप्त होता है।

नर्मदा की उपकंठ भूमि अति प्राचीन संस्कृति की धात्री रही है। इस मही माता की चीरधारिणी मुद्रा से मानव का सर्वतोमुखी जीवन धन्य हुआ है। इस संग्रह के लोक-गीत उसी जीवन की अक्षर-मालिका प्रस्तुत करते हैं। गाँवों और जनपदों में, सुदूर नदियों के कांठों में और पहाड़ों की गुफाओं में शहद के छत्ते पर लगी हुई मधुमक्खियों की तरह जो जनता भरी हुई है, वह राष्ट्रीय आलोक के फैलने से हमारे दृष्टिपथ में क्रमशः आ रही है और राष्ट्रीय चेतना का अभिन्न अंग बन रही है। नर्मदा या निमाड़ की भूमि तो उपलक्षण मात्र है। काश्मीर की कृष्णगंगा और मरुद्वृधा नदी द्रोणियों से लेकर दक्षिण कोसल की इन्द्रवती और शबरी नदियों के उपकंठों तक एक नये युग का आगमन हुआ है। किसी महा वसन्त के प्राणवंत फगुनहटे ने उत्तर दक्षिण पूर्व-पश्चिम की चारों दिशाओं को झकझोर डाला है। उसके कारण हमें अपने जीवन के चौमुखी सौन्दर्य को पहचानने और समझने की नई आँख मिल रही है। राजस्थानी लोक-गीत, भोजपुरी लोक-गीत, काश्मीरी लोकगीत, पंजाबी लोकगीत, गढ़वाली लोकगीत,

बघेली लोकगीत, छत्तीसगढ़ी लोकगीत, सोरठी लोकगीत इत्यादि अनेक प्रदेशों के लोकगीतों के संग्रह कुछ ही वर्षों के भीतर सामने आये हैं।

जिस प्रकार षोड़श संस्कारों के मन्त्र गृह-जीवन मे बराबर हमारे साथ रहते हैं उसी प्रकार मन्त्रों से भी अधिक व्यापक लोक-गीत घरों के भीतर और घरों से बाहर भी मानव-जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। जीवन में जो उल्लास और करुणा से भरा हुआ क्षेत्र है, जो प्रेम और त्याग का, संयोग और वियोग का गाढा रंग है वह पदे पदे इन गीतों में मिलता है। लोक–गीतों मे भी विवाह–गीत सबसे विचित्र और सरस होते हैं। मानवीय जीवन में विवाह सबसे बड़ी घटना है। विवाह द्वारा व्यक्ति का जीवन जितना संस्कार–सम्पन्न बनता है उसमें जो विलक्षण परिवर्तन होता है, वैसा अन्य विधि से नहीं। मानव–जीवन का सबसे प्रभाव-शाली रस शृंगार है। उसी के स्वस्थ, संयत स्वरूप से अधिकांश लोक–गीत निर्मित होते हैं। प्रस्तुत संग्रह में भी विवाह के गीतों का श्लाघनीय संकलन हुआ है। जैसे किसी यज्ञ के कर्मकाण्ड का वितान मन्त्र और गान को साथ लिये हुए फैलता है वैसे ही विवाह-यज्ञ का वितान इन लोक गीतों में फैला हुआ दिखाई पड़ता है।

एक गीत में सूत्र रूप से मानवीय भावना का सार इस प्रकार कहा है—सब रसों में उत्तम रस, सब रंगों में उत्तम रंग, सब सुखों मे उत्तम सुख, हे फूलों पर गान करने वाले भौंरे, मैं तुझसे पूछती हूँ। भौंरे की ओर से उत्तर है सासरे और मायके, ससुर-गृह और मातृ गृह का जितना सुख है, उस सुख का संक्षिप्त रूप पुत्र है।

प्रायः प्रत्येक जनपद के विवाह–गीतों में गणेशजी के स्वागत का गीत पाया जाता है। ग्यारह रुद्रों में प्रथम रुद्र गणपति हैं। सोम की आहुति से रुद्र शिव बनते है। महा शीतल दूर्वा और

पानी गणेशजी का प्रधान प्रिय तत्व माना जाता है। राजस्थानी गीतों में गाते हैं—

पहले तो बासो सरवर बसियो
सरवर भरिया ठंडा नीर का।

हे श्री गणपति, हमारे भवन की मंगल-यात्रा के पथ पर आपका पहला निवास उस सरोवर में है जहाँ शीतल जल भरा हुआ है। दूसरा बासा उन उद्यानों में है जहाँ बिजोरे नीबू फल रहे हैं। तीसरा बासा उन बस्तियों में है जहाँ मनुष्यों के सन्नि-वेश हैं। चौथा बासा गृह-द्वार के उस तोरण पर है जहाँ सुन्दर चिड़िया बैठी हुई है।

चौथो तो वासो तोरण बसियो
तोरण सोहे रूड़ी चिड़कली।

यह सुन्दर चिड़िया जो द्वार पर गणपति का स्वागत करती है वही है जिसे वैदिक भाषा में गरुला सुपर्ण या सूर्य की माता सुपर्णी कहा जाता था। वह प्राण की शक्ति गृह के तोरण पर गणपति का स्वागत करती है। गणपति का पाँचवाँ बासा उन माताओं में है जो भवन के भीतर सुवासिनी नारियों के रूप में मंगल-गान करती हैं। छठा बासा मंडप के नीचे उस कृत्य में है जिसमें वेदध्वनि सुनाई पड़ती है। हे गणपति, तुम्हारा सातवाँ बासा उस वेदी पर है जहाँ वर-कन्या विराजमान हैं। यही तुम्हारे हमारे सख्यभाव की सप्तपद है। तुम्हारे ये सात विश्राम मानव-जीवन के लिये सम्पूर्ण सुखों के प्रतीत हैं। इस राजस्थानी लोक-गीत के भावों की परम्परा शुद्ध वैदिक काल से मिली हुई है। आवाहन और स्वागत के ये स्वर कुछ भेद से पाये जाते हैं। निमाड के गणपति यात्रा करते हुए सर्व प्रथम शीतल वट वृक्ष के नीचे आकर उतरते हैं।

गढ़ रे गुजरात सु देव गणपति आया हो
आई न उतर्‌या ठडा वड़ तळऽ ।

कौन से घरों मे सोहागिनें गणपति का पूजन करेंगी, कौन से घरों मे सोहागिनें मंगल गायेगी ? उन घरों मे जहाँ पुत्र और पुत्री उत्पन्न होंगे। उन्हीं घरों के आँगन में सीपी मे भरे हुए श्रीखंड और थाली में भरे हुए मोतियों से गणेशजी को स्वागत मिलेगा। ये भावनाएँ गृहस्थ जीवन के मांगलिक अभिप्राय है।

निमाड़ी गीतों में राजस्थानी गीतों के समान ही गनगौर के गीतों का भी महत्व है। गनगौर की भावना के पीछे देवी का पूजन है, जिसकी पहिचान विश्व की मातृ देवी अम्बिका से की जा सकती है। इस महीमाता अम्बिका के अनेक नाम और रूप हैं। निमाड़ी लोक-गीतों में उसे रनु या रणा देवी कहा गया है। रनुबाई वस्तुतः सौराष्ट्र देश की देवी थी जिसे संस्कृत में राज्ञी कहते थे।

थारो काई काई रूप बखाणु रणु बाई
सोरठ देश सी आई ओ।

राज्ञी का सम्बन्ध सूर्यदेवता के साथ था। सूर्य की उपासना करनेवाले शकों का राज्य लगभग चार सौ वर्षों तक सौराष्ट्र देश पर रहा। उसी समय इस विस्तृत प्रदेश में राज्ञी और निक्षुभा इन दो देवियों की कल्पना सूर्य के साथ प्रचलित हुई। राज्ञी प्राचीन ईरानी धर्म में रश्न देवी के रूप में ज्ञात थी। वही रनु बाई या या रणा देवी के रूप में पूजित हुई, जिसकी परंपरा लोक-गीतों में और मूर्त्तियों के रूप में भी मिलती है। वस्तुतः वैदिक कल्पना के अनुसार सूर्य की पुत्री सूर्या का सोम के साथ सम्मिलन ही विवाह है। उसी सूर्या का नयावतार राज्ञी या रणु बाई के रूप में हुआ। रणु देवी केवल गाथाशास्त्र की देवी नहीं रही, वह उस

प्रत्येक कन्या के रूप में दर्शन देती है जो विवाह-मंडप में चूनरी पहिनकर विराजती है।

प्रस्तुत संग्रह में नृत्य गीत, शृंगार गीत, लोरी और बच्चों के गीत, उत्सवों के गीत और कुछ विविध गीत भी हैं जो निमाड़ी लोक साहित्य का एक समृद्ध रूप सामने रखते हैं। बेहुला गाय और सिंह का वह अत्यन्त द्रावक गीत भी जनपदीय पंक्तियों में उपलब्ध हुआ है। इस में एक गाय हिंसक सिंह के सामने आत्मसमर्पण करती है और धर्म की शपथ से अपने को बाँधकर सिंह के हिंस्र पाशों से अपना छुटकारा कराती है। वह अपने बच्चे को उस दुग्ध का पान कराती है जो उसके मातृत्व और स्नेह का प्रतीक है। यह बेहुला गाय कौन है? यह स्वर्ग की सुरभि या कामधेनु है; धर्म का प्रतीक है। न केवल गौ और उसका वत्स, बल्कि स्वयं सिंह भी सृष्टि के धर्मात्मक नियमों के अनुशासन में है। भारतीय जीवन में धर्म की जो प्रतिष्ठा है, उसकी जो सर्वव्यापक शक्ति और अन्तिम टेक है उसी की अभिव्यक्ति इस लोक-गीत में पाई जाती है। इसमें जिस काव्यमय ढंग से धर्म की महिमा को प्रकट किया गया है वह बहुत ही हृदयग्राही है। गौ और वत्स हमारे जीवन के जाने-पहिचाने अभिप्राय हैं। दूसरी ओर वह हिंस्र सिंह है जो मानवीय जीवन के सत्य या धर्म पर आक्रमण करता है; किन्तु अहिंसा, समर्पण, सत्य और स्निग्ध प्रेम के प्रभाव से वह अपने स्वभाव में परिवर्तन करके स्वयं दैवी गुणों का पोषक बन जाता है। धर्म और अधर्म के द्वन्द्व और समन्वय का इतना संक्षिप्त और हृदयग्राही कथन जैसा इस लोक-गीत में है, कम प्राप्त होता है। इस गीत को सचमुच भारतीय संस्कृति का राष्ट्रीय लोक-गीत ही कहना चाहिये।

काशी विश्वविद्यालय] —वासुदेवशरण अग्रवाल



जन्म के गीत

जन्मोत्सव से लेकर श्राद्धानुष्ठान तक किसी को भी हमने व्यक्तिगत घटना की क्षुद्रता में बन्द कर के नहीं रखा। इन सब उत्सवों में हम संकीर्णता को विसर्जित कर देते हैं। उस दिन हमारे घर का द्वार बिलकुल खुल जाता है। केवल आत्मीय स्वजनों के लिये ही नहीं, केवल बन्धु-बान्धवों के लिये ही नहीं, अज्ञात अनाहूत के लिये भी। पुत्र, जो जन्म लेता है वह हमारे घर में नहीं किन्तु समस्त मनुष्य के घर में जन्म लेता है। समस्त मनुष्य के गौरव का वह अधिकारी होकर जन्म ग्रहण करता है। उसके जन्म-मंगल के आनन्द में हम समस्त मनुष्य को आह्वान न करें, यह कैसे हो सकता है। वह यदि किसी एक के घर जन्म लेता तो उसके समान दीन-हीन जगत में और कौन होता। सम्पूर्ण मानव ने ही जो उसके लिये वस्त्र, आवास, भाषा, ज्ञान और धर्म प्रस्तुत कर रखा है, मानव में अन्तर्निहित, नित्य चेतन, मंगल शक्ति की गोद में जन्म लेकर वह जो उसी क्षण धन्य हुआ है उसके जन्मोत्सव में, एक दिन घर के सब द्वार खोलकर यदि हम समस्त मनुष्य को स्मरण न करें तो फिर कब करेंगे। अन्य समाज ने जिसे घर की घटना माना है, भारत समाज ने उसे जगत की घटना कर दिया है। और यह जगत की घटना ही जगदीश्वर के पूर्ण मंगल आविर्भाव को प्रत्यक्ष करने का यथार्थ अवकाश है।

रवीन्द्र-साहित्य भाग २५/१२८ — श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर



बधाई बाबा नन्द घर

हमारे यहाँ बच्चे का जन्म सुख और सौभाग्य का प्रतीक माना गया है। इसीसे इस दिन गीत गाये जाते हैं, मिठाई बाँटी जाती है, बाजे बजवाये जाते हैं, और सारे परिवार में हर्ष और आनन्द मनाया जाता है। निमाड़ में उस अवसर पर गाये जानेवाले गीत "जच्चा के गीत" के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं।

देखिये, साथ के एक गीत में बच्चे के जन्मोत्सव को लेकर, सारे परिवार में किस तरह हर्ष और उल्लास मनाया जाता है उसका वर्णन सुनिये—

न्हाई जऽ धोई देवी देवकी, आँनऽ दियो पलंग पर पांव
भोळई दायण हो, धनको ससुरो जगाव,
तुम जागो न ससराजी सुहावणा हो गड़या ते गड़ीत्र हेड़ाव
तुम्हारी बहुवर हो राजा, जायो नन्दलाल,
बधाई बाबा नन्द घर।

भोळई दायण हो धन का जेठ जगाव,
तुम जागो न जेठजी सुहावणा हो नगर वस्त्र बटाव,
तुम्हारी बहुवर हो राजा, जायो नन्दलाल,
बधाई बाबा नन्द घर।

भोळई दायण हो धन का देवर जगाव,
तुम जागो न देवरजी सुहावणा हो, नगर तमोळ बटाव
तुम्हारी भावज हो राजा, जायो नन्दलाल,
बधाई बाबा नन्द घर।

भोळई दायण हो धन का नंणदोई जगाव,
तुम जागो न नंणदोई सुहावणा हो, नगर बजंत्र बजाव,
तुम्हारी बहुवर हो राजा, जायो नन्दलाल
बधाई बाबा नन्द घर।

भोळई दायण हो धन का स्वामी जगाव,
तुम जागो न स्वामी सुहावणा हो, दिया ते बचन सम्हालो
तुम्हारी गोरी न हो राजा, जायो नन्दलाल,
बधाई बाबा नन्द घर।

अर्थ—स्नान-श्रृङ्गार कर, देवकी ने पलंग पर पाँव रखा,
हे भोली दायन, तुम सौभाग्यशाली श्वसुर को जगाओ,
हे श्वसुरजी उठो, और गड़ा हुआ धन निकाल कर बँटवा दो,
तुम्हारी बहू ने एक सुन्दर बच्चे को जन्म दिया है,
बाबा नन्द घर बधाई है।

हे भोली दायन, तुम सौभाग्यशाली जेठ को जगाओ,
हे जेठजी उठो, और सारे नगर में वस्त्र बँटवा दो,
तुम्हारी बहू ने एक सुन्दर बच्चे को जन्म दिया है,
बाबा नन्द घर बधाई है।

हे भोली दायन, तुम सौभाग्यशाली देवर को जगाओ,
हे देवरजी उठो, और सारे नगर में तमोल बँटवा दो,
तुम्हारी भाभी ने एक सुन्दर बच्चे को जन्म दिया है,
बाबा नन्द घर बधाई है।

हे भोली दायन, तुम सौभाग्यशाली ननदोई को जगाओ,
हे ननदोईजी उठो, और सारे नगर में बाजे बजवाओ,

तुम्हारी बहू ने एक सुन्दर बच्चे को जन्म दिया है,
बाबा नन्द घर बधाई है।

हे भोली दायन, तुम सौभाग्यशाली स्वामी को जगाओ,
हे स्वामीजी उठो, और अपने दिये हुए वचनों का पालन करो,
तुम्हारी पत्नी ने एक सुन्दर बच्चे को जन्म दिया है,
बाबा नन्द घर बधाई है।



जिनके यहां कामदेव की तरह सुन्दर बच्चे का जन्म हुआ है

यह भी एक बच्चे के जन्म के समय का बधाई-गीत है। इसमें हमारे उस स्नेहिल समाज का दर्शन है, जिसमें किसी के भी यहाँ जन्म लेने वाले बच्चे का धरती पर एक "नये इन्सान" के आने की तरह स्वागत किया जाता है और उसे प्रत्येक वर्ग की ओर से कुछ न कुछ भेंट दी जाती है।

इसमें, अपने यहाँ बच्चे का जन्म होने पर, बड़ी माँ के असीम उल्लास एवम् घर-घर भेजी जानेवाली बधाइयों का वर्णन भी सुनिये—

म्हारा घर मदनसिंह जलमियो।
हउँ तो जोसी घर भेजूं बधाओ, मारा घर पोथी-पुराण लई आवऽ।
पोथी वाचसे नानो-सो बालुड़ो, पुराणवाचसऽ ओको बाप।
मारुणी न मदनसिंह जलमियो।
हउँ सोनी घर भेजूं बधाओ, म्हारा घर कड़ा-तोड़ा लई आवऽ।
तोड़ा पेरसे नानो-सो बालुड़ो, कड़ा पेरऽ नाना को बाप।
मारुणी न मदनसिंह जलमियो।
हउँ तो बजाजी घर भेजूं बधाओ, म्हारा घर साडी वागो लई आवऽ।
साड़ी पेरऽ गा नाना की माय, वागो पेरऽ नाना को बाप।

मारुणी न मदनसिंह जलमियो।

हुउँ तो दरजी घर भेजूँ बधाओ, म्हारा घर झगो-टोपी लई आवऽ।

झगो पेरऽ गा नानो-सो बालुड़ो, टोपी पेरसे नाना को भाई।

मारुणी न मदनसिंह जलमियो।

हुउँ तो बीराजी घर भेजूँ बधाओ, म्हारा घर पंच-पेलो लई आवऽ।

पेलो पेरऽ गा नाना की माउलो, पचो बांधऽ गा नाना को बाप ।।

हुउँ तो सबई घर भेजूँ बधाओ, म्हारा घर मदनसिंह जलमियो ।।

अर्थ मेरे यहाँ कामदेव की तरह सुन्दर बच्चे का जन्म हुआ है।

मैं जोशी (ब्राह्मण) के यहाँ बधाई भेजती हूँ,

वह मेरे यहाँ पोथी और पुराण लेकर आये।

पोथी तो मेरा बच्चा पढ़ेगा, और पुराण उसके पिताजी पढ़कर सुनायेंगे।

मैं सुनार के यहाँ बधाई भेजती हूँ,

वह मेरे यहाँ कड़े और तोड़े लेकर आये।

तोड़े तो मेरा बच्चा पहिनेगा, और कड़े उसके पिताजी पहिनेंगे।

मैं बजाज के यहाँ बधाई भेजती हूँ,

वह मेरे यहाँ साड़ी और बागा (कोट) लेकर आये

साड़ी तो बच्चे की माँ पहिनेगी, और कोट उसके पिताजी को शोभा देगा।

मैं दर्जी के यहाँ बधाई भेजती हूँ,
वह मेरे यहाँ झगा और टोपी लेकर आये।
झगा तो मेरा बच्चा पहिनेगा, और टोपी उसके भाई के लिये होगी।

मैं अपने भाई के यहाँ बधाई भेजती हूँ,
वे मेरे यहाँ पीला वस्त्र और पगड़ी लेकर आयें।
पीला वस्त्र तो बच्चे की माँ पहिनेगी, और पगड़ी बच्चे के पिताजी को शोभा देगी।

मैं सभी के घर बधाई भेजती हूँ,
आज मेरे यहाँ कामदेव की तरह सुन्दर बच्चे का जन्म हुआ है।

विवाह के गीत

विवाह-व्यापार को भी भारतवर्ष केवल पति-पत्नी के आनन्द-मिलन की घटना नहीं समझता। प्रत्येक मङ्गल-विवाह को उसने मानव-समाज का एक एक स्तम्भ जानकर उसे समस्त मानव का व्यापार कर दिया है।

रवीन्द्र साहित्य भाग २५/१२६

× × ×

तुच्छता के संसार में, खरीद-फ़रोख्त की दुनिया में, वर-वधू भी तुच्छ हैं। कौन तो जानता है उनका नाम-ग्राम, और कौन उनके लिये आसन छोड़ देता है। किन्तु रस के नित्यालोक में वे राजा-रानी हैं। चारों ओर के क्या छोटे और क्या बड़े, सब कुछ से उन्हें अलग करके उन्हें लाकर कमख्वाब के सिंहासन पर वरण करना होगा। प्रतिदिन वे तुच्छता का अभिनय करते हैं इसीलिये प्रतिदिन वे छाया के समान अकिंचित्कर हैं। आज वे सत्यरूप से प्रकाशवान हैं। आज उनके मूल्य की सीमा नहीं। उनके लिये आज दीपों की माला संजोई गई है, फूलों की डाली सुसज्जित है और वेद-मंत्र से आशीर्वाद करने के लिये चिरन्तन काल उपस्थित है।

ये वर वधू, ये दो व्यक्ति जो सत्य हैं किसी राजा-महाराजा से कुछ कम सत्य नहीं।

रवीन्द्र-साहित्य भाग २४/५० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर



पांच बधाइयाँ : जो बड़ी ही सुन्दर लग रही हैं

यह एक बधाई-गीत है। इसमें विवाह के अवसर पर भेजी जाने वाली उन पाँच बधाइयों का वर्णन है जो क्रमशः श्वसुर, पिता, जेष्ठ, भाई और कूख को दी जाती हैं। इसमें श्वसुर और पिता, तथा जेष्ठ और भाई के प्रति समान प्रेम प्रदर्शित किया गया है। साथ ही, माँ की उस कूख को भी प्रतिष्ठा दी गई है, जिसके कारण यह शुभ दिन देखने को मिला। इसमें उस बहिन की मन-स्थिति का भी जिक्र है जिसका मन अपने भाई के यहाँ से विवाह का निमन्त्रण पाते ही विवाह-घर चलने के लिये ललक उठता है—

पाँच बधावा पिया न हो लगऽ रे सुहाणा हो।
पाँच बधावा आवतऽ हमनऽ देख्या।
पहलो बधावो पिया न हो, ससुरा घर भेजो.
कि दूसरो बधावो सहोदर बाप घर,
तीसरो बधावो पिया न हो, जेठ घर भेजो,
कि चौथो बधावो सहोदर ईरा घर,
पाँचवो बधावो पिया न हो, कूख सुलेखणी,
जिन्नऽ बतायो हो धनको सोयलो,
अम्बा जऽ वन की पिया न हो कोयल बोली,
चलो पिया, चलो पिया, अम्बा वन आमली,
वरस न रहेमां पिया न हो, मास न रहेसां,
काचा ते वनफल गद्‌गद्‌या
मांची बसतां पिया न हो मोठी बेण बोल्या,

चलो पिया, चलो पिया, ईरा घर पांवणां,
वरस न रहेसां, पिया न हो, मास न रहेसां,
आठ जो दिन का ईराजी घर पांवणां हो।
सोन्नो नी मांगां हो, रुप्पो नी मांगां हो,
छोटी बहूजी को गहणो चित लागी रह्यो।

अर्थ—पाँच बधाइयाँ हे प्रिय! बड़ी ही सुहावनी लग रही हैं।
पाँच बधाइयाँ आते हुए आज हमने देखीं।
पहली बधाई हे प्रिय! श्वसुर घर भेजो,
और दूसरी बधाई सहोदर पिताजी के यहाँ,
तीसरी बधाई हे प्रिय! जेष्ठजी के घर भेजो,
और चौथी बधाई सहोदर भाई के यहाँ,
पाँचवीं बधाई हे प्रिय! उस सुहागिन कूख को है,
जिसके कारण यह शुभ दिन देखने को मिला।
आम्र-वन की कोयल बोली हे प्रिय!
चलो, चलो, आज हम आम्र-वन की ओर चलें।
वहाँ हम वर्ष भर नहीं रहेंगे, माह भर नहीं रहेंगे,
देखो वहाँ तो कच्चे वन-फल गदरा रहे हैं,
बाजुट पर बैठी हुई हे प्रिय! बड़ी बहिन बोलीं,
चलो प्रिय, चलो प्रिय, आज हम भाई के यहाँ मेहमान होंगे,
वहाँ पर वर्ष भर नहीं रहेंगे, माह भर नहीं रहेंगे,
सिर्फ आठ दिन के लिये हम भाई के घर मेहमान होंगे,
हे प्रिय! हम तुमसे सोना नहीं माँगते, रूपा नहीं माँगते,
हमारा मन तो छोटी बहू के गहनों में लगा हुआ है।



पाँच बधाइयाँ—जिनकी नई नई रीत है

यह भी एक बधाई-गीत है। जब किसी के विवाह का निश्चय किया जाता है, तो उसमें सबसे पहले "खन-माटी" का मुहूर्त निकाला जाता है। उस दिन पारिवारिक महिलाएँ मिलकर गीत गाते हुए गाँव से बाहर आकर, वहाँ से हाथ से खोदी हुई पवित्र मिट्टी लाती हैं और तब उस मिट्टी से विवाह के उपलक्ष में, कुछ हाथ से बने चूल्हे और कोठियों का निर्माण किया जाता है। और यूँ विवाह का शुभकार्य प्रारम्भ होता है।

तभी निम्नोक्त बधाई-गीत गाया जाता है—

जी हो, पाँच बधावा म्हारा यहाँ आविया,
पाँचई की नवी नवी रीत।
जी हो, नरवरगढ़ को ऊदो चूड़ो खुली रह्यो,
जी हो, ऊदो चूड़ो नऽ पोयचो सांवळो।
चूडीला पर उग्यो सूर्या भान महाराज
जी हो, पहिलो बधावो म्हारा यहाँ आवियो।
भेज्यो म्हारा ससराजी दरबार,
जी हो, ससुराजी रङ्ग सु बधाविया,
सासु नारेळ भरया थाळ महाराज,
जी हो दूसरो बधावो म्हारा यहाँ आवियो।
भेज्यो म्हारा पिताजी द्वार,
जी हो पिताजी रङ्ग सु बधाविया,
माता मोतियन भरया थाळ महाराज,
जी हो तीसरो बधावो म्हारा यहाँ आवियो।

भेज्यो ते जेठजी द्वार,
जी हो, जेठजी रङ्ग सु बधाविया,
जेठाणी न लियो पगरण सार महाराज,
जी हो, चौथो बधावो म्हारा यहाँ आवियो।

भेज्यो म्हारा बीराजी द्वार,
जी हो, बीराजी रङ्ग सु बधाविया,
भावज न लियो घूँघट सार,
जी हो, पाँचवो बधावो म्हारा यहाँ आवियो।

भेज्यो म्हारी धनकेरी कूख,
जी हो इनी कूख हीरा रत्न नीवज्या
जे को ते पगरण अरंभियो।

अर्थ—ए जी पाँच बधाइयाँ मेरे यहाँ आई हैं।
पाँचों की नई नई रीत है।
ए जी, नरवरगढ़ का ऊदा चूड़ा चमक रहा है,
ऊदा चूड़ा है, और उनका साँवला हाथ है।
और इस चूड़े पर सूर्य का प्रकाश चमक रहा है,
ए जी, पहली बधाई मेरे यहाँ आई है।
वह मेरे श्वसुरजी ने भेजी है,
ए जी, श्वसुर ने उसे रङ्ग से बधाया है,
और सास ने नारियल भरे थालों से उसका स्वागत किया है।
ए जी, दूसरी बधाई मेरे यहाँ आई है।
जिसे मेरे पिताजी ने भेजी है,
ए जी, पिताजी ने उसे रङ्ग से बधाया है;
और माँ ने मोतियों से भरे थाल से उसका स्वागत किया है।

ए जी, तीसरी बधाई मेरे यहाँ आई है।
जिसे मेरे जेठजी ने भेजी है,
ज्येष्ठ ने उसे रङ्ग से बधाया है,
और जेठानी ने इस शुभकार्य का स्वागत किया है।

ए जी, चौथी बधाई मेरे यहाँ आई है।
जिसे मेरे भाई ने भेजी है,
भैया ने उसे रङ्ग से बधाया है,
और भौजाई ने घूंघट खींच लिया है।

ए जी, पाँचवी बधाई मेरे यहाँ आई है।
जो कि सौभाग्यशाली कूख की है,
जिससे हीरे और रत्नों जैसे पुत्र का जन्म हुआ है,
और जिसको लेकर आज के इस शुभ कार्य का आरम्भ किया गया है।

ए जी, पाँच बधाइयाँ मेरे यहाँ आई हैं,
पाँचों की नई नई रीत है।



जिसने हर्षित होकर शुभकार्य आरम्भ किया है

इस गीत में, विवाह आदि शुभ कार्यों में जब पारिवारिक जन नहीं आ पाते, तो सारा कार्य किस तरह सूना लगता है और उनके आ जाने पर सारा घर किस तरह लहलहा उठता है—इन दोनों अवस्थाओं के वर्णन सुनिये। इस में, माता-पिता के लिये दशरथ-कौशल्या, भाइयों के लिये राम-लछमण और बहिन के लिये सुभद्रा की उपमाएँ कितनी सुन्दर बन पड़ी हैं।

गीत के बोल हैं—

जी हो आज म्हारो पटसाळ सूनो लगऽ
नही आया म्हारा दशरथ बाप,
हरकत पगरण आरंभियो।

जी हो आज म्हारो पाळणो सूनो लगऽ
नही आई म्हारी कौशल्या माय,
हरकत पगरण आरंभियो।

जी हो आज म्हारो मण्डप सूनो लगऽ
नहीं आया मारा राम-लछमण बीरा,
हरकत पगरण आरंभियो।

जी हो आज म्हारी आरती सूनी लगऽ
नही आई म्हारी सुभद्रा बेण,
हरकत पगरण आरंभियो।

इसके बाद वह गणेश की पूजा करती है। तब गीत के बोल चलते हैं—



जी हो आज म्हारो देवमन्दिर लहलहे,
आया म्हारा गणपत राव,
हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो आज म्हारी पटसाळ लहलहे
आया म्हारा दशरथ बाप,
हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो आज म्हारो पाळणो लहलहे
आई म्हारी कौशल्या माय,
हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो आज म्हारो मण्डप लहलहे
आया म्हारा राम-लछमण बीरा,
हरकत पगरण आरंभियो।
जी हो आज म्हारी आरती लहलहे
आई म्हारी सुभद्रा बेण,
हरकत पगरण आरंभियो।

अर्थ—ए जी आज मेरा ब्याह-घर सूना लग रहा है,
मेरे दशरथ-तुल्य पिताजी नहीं आये,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।
ए जी आज मेरा पालना सूना लग रहा है,
मेरी कौशल्या समान माता नहीं आई,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।
ए जी आज मेरा मण्डप सूना लग रहा है,
मेरे राम-लक्ष्मण की तरह भाई नहीं आये,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।
ए जी आज मेरी आरती सूनी लग रही है,

मेरी सुभद्रा की तरह बहिन नहीं आई,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।

और तब वह गणेश का पूजन करती है। गीत के बोल चलते हैं—

ए जी आज मेरा देव-मन्दिर लहलहा रहा है,
मेरे यहाँ गणेशजी आये हैं,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।
ए जी आज मेरा ब्याह-घर लहलहा रहा है,
मेरे यहाँ दशरथ तुल्य पिताजी आये हैं,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।
ए जी आज मेरा पालना लहलहा रहा है,
मेरे यहाँ कौशल्या-सम माँ आई है।
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।
एजी आज मेरा मण्डप लहलहा रहा है,
मेरे यहाँ राम-लछमण की तरह भाई आये हैं,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।
ए जी आज मेरी आरती लहलहा रही है,
मेरे यहाँ सुभद्रा की तरह बहिन आई है,
मैंने हर्ष से शुभ कार्य आरम्भ किया है।



रंगीन बधाई, सरस बधाई

बधाई-गीतों के बिना हमारा कोई भी मांगलिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। लगता है इन स्नेहाशीर्वचनों को लेकर ही तो मानव-जीवन कठिनाइयों के बावजूद भी सुख और समृद्धि की राह आगे बढ सका है। देखिये साथ के एक गीत में ये बधाइयाँ कितनी सरस होकर उतरी हैं—

राजा तुम तो कुण भाई का जाया,
लाल कह्वासो, कुवर कह्वासो, पुत्र कह्वासो हो महाराजा।
रङ्ग रो बधावो, सरस बधावो !
राजा तुम हो मोठाजी भाई का जाया,
लाल कह्वासो कुवर कह्वासो, पुत्र कह्वासो हो महाराजा।
रङ्ग रो बधावो, सरस बधावो !
राजा तुम्हारी माता छे मोठी बहू,
गोद खिलाया, पालणा झुलाया, दूध पिलाया जी महाराजा।
रङ्ग रो बधावो, सरस बधावो !
राजा तुम्हारी गोरी छे लाड़ी बहू,
झारी भरी लाया, थाळ परोस्या बीड़ला संजोया हो महाराजा।
रङ्ग रो बधावो सरस बधावो !
राजा तुम्हारी वैण छे सोभागेण नार,
सातीड़ा पुराया, आरती संजोया, मोती से बधाया हो महाराजा।
रङ्ग रो बधावो, सरस बधावो !

अर्थ—हे राजा ! तुम किस भाई की सन्तान हो।
किसके लाल कहलाओगे, कुंवर कहलाओगे, पुत्र कहलाओगे,
हे महाराजा !
तुम्हें रंगीन बधाई, सरस बधाई।
हे राजा ! तुम बड़े भाई की सन्तान हो।
उसके लाल कहलाओगे, कुंवर कहलाओगे, पुत्र कहलाओगे,
हे महाराजा !
तुम्हें रंगीन बधाई, सरस बधाई।
हे राजा ! तुम बड़ी बहू की सन्तान हो।
जिसने तुम्हें गोद खिलाया, पलना झुलाया, दूध पिलाया
हे महाराजा !
तुम्हें रंगीन बधाई, सरस बधाई।
हे राजा ! तुम्हारी गौरवर्ण पत्नी है
जो झारी भरकर लाती है, थाल परोसती है और तुम्हारे लिये
पान का बीड़ा सँजोकर रखती है हे महाराजा !
तुम्हें रंगीन बधाई, सरस बधाई।
हे राजा ! तुम्हारी सौभाग्यवती बहिन है।
जो तुम्हारे द्वारे साती लगाती है, आरती संजोती है, और
मोतियों से तुम्हें बधाई देती है हे महाराजा !
तुम्हें रंगीन बधाई, सरस बधाई।

हे आम्र-वन के सुग्गे !

विवाह के समय मनुष्य का मन कुछ इस कदर आनन्द से भरा होता है कि वह प्राणीमात्र के प्रति स्नेहिल हो उठता है। देखिये एक सुग्गे के प्रति कहे गये इन शब्दों में उसके मन का प्यार किस तरह छलकता हुआ दीखता है—

तुम तो आवजो हो रे, अम्बाज वन का सूअ्ड़ा ॥
तुमखऽ बठणऽ ख रे अच्छा सा बाजुट देवां,
बठो तो लागो सुहावणा ॥ १ ॥
तुमारा पायण ख रे रुणभुण घुँघरू देवां,
चलो तो लागो सुहावणा ॥ २ ॥
तुम्हारी चोंच न रे हीरा रत्न जड़ावां,
बोलो तो लागो सुहावणा ॥ ३ ॥
तुमखऽ चुगण ख रे केशर चावल देवां,
चुगो तो लागो सुहावणा ॥ ४ ॥

अर्थ—हे आम्र-वन के सुग्गे, तुम मेरे यहाँ (विवाह में) अवश्य आना हाँ, हे भाई।

तुम आओगे तो तुम्हें बैठने के लिये अच्छा बाजुट देंगे, बैठोगे तो बड़े ही सुहानने लगोगे।

तुम्हारे पाँवों के लिये रुमझुन घुंघरु देंगे,
चलोगे तो बड़े ही सुहावने लगोगे।
तुम्हारी चोंच हीरे और रत्न से जड़ा देंगे,
बोलोगे तो बड़े ही सुहावने लगोगे।
तुम्हारे खाने के लिये केशर और चावल देंगे,
चुगोगे तो बड़े ही सुहावने लगोगे।
हे आम्र-वन के सुग्गे, तुम मेरे यहाँ विवाह में अवश्य आना।
आना हाँ, हे भाई!



नारी-जीवन के लिये सबसे बड़ा सुख

विवाह के अवसर पर ऐसा एक भी कार्य नहीं होता जो बिना गीत के न हो। अनाज आदि सुधारने के समय नित्य गीत गाये जाते हैं। इसमें मैके, ससुराल, और स्वामी से भी बढ़कर नारी के लिये सबसे बड़ा सुख उसकी सन्तान में है। इस गीतमें उसका महत्त्व दर्शाया गया है—

मैं तोहे पूछूं, रे भवरिला,
सब रस काहे का होय,
रटणऽ करो रे अपणा देश मंऽ
रस अम्बो, रस आमली,
सब रस लिम्बुआ को होय,
रटणऽ करो रे अपणा देश मंऽ
मैं तोहे पूछूं, रे भवरिला,
सब रङ्ग काहे का होय,
रङ्ग छापा रे रङ्ग चूनड़ी,
सब रङ्ग कुसुमळ होय,
रटणऽ करो रे अपणा देश मंऽ
मैं तोहे पूछूं, रे भवरिला,
सब सुख काहे का होय,
सुख सासरो, सुख मायक्यो,
सब सुख पुत्र को होय,
रटणऽ करो रे अपणा देश मंऽ

अर्थ–मैं तुमसे पूछ रही हूँ, हे भौंरे,
सब रस किसमें होते हैं?
हे भाई! अपने देश को चलो।
रस आम, और रस इमली का होता है,
लेकिन सब रस निंबू में होते हैं।
हे भाई! अपने देश को चलो।
मैं तुमसे पूछ रही हूँ, हे भौंरे,
सब रङ्ग किसमे होते हैं?
रङ्ग छापा, और रङ्ग चूनर का होता है,
लेकिन सब रङ्ग कुसुमल होता है।
हे भाई! अपने देश को चलो।
मैं तुमसे पूछ रही हूँ, हे भौंरे,
सब सुख किसमें होते हैं?
सुख ससुराल, और सुख मायके का है,
लेकिन सब सुख सन्तान में होता है।
हे भाई! अपने देश को चलो।



जिनके यहां लक्ष्मी का कोई अन्त और पार नहीं है

इस गीत में आतिथ्य-सत्कार के साथ निमाड़ की संस्कृति, सम्पत्ति और वैभव का दर्शन कराया गया है। गीत इस प्रकार है—

मेजवान आया, भला हो आया, रूढ़ो हो आया।
जिनको तो देखां वाट जी ॥
निकळो लाड़ी बाई आंगणऽ, मेजवान आया द्वार जी,
पलग तुळई दिया आंगणऽ, दूध पखार्‍या पांय जी।
केशर घोळई वाटकी, रिझणो तो ढोळयो ह्वाळजी,
तुलसी बिन्द्रावन ओटलो, लछमी को अन्त नी पार जी ॥

अर्थ—मेहमान आये हैं, भले आये हैं, समय से आये हैं, जिनकी
हम प्रतीक्षा ही कर रहे थे।
हे बहू, बाहर तो आओ, देखो हमारे दरवाजे मेहमान आये हैं,
उनके स्वागतार्थ आँगन में पलंग बिछा दिये गये, तथा दूध से
उनके पाँव धोये गये।
उन्हें कटोरी में केशर घोल कर लगाई गई, तथा पंखों से
हवा दी गई।
उनके आँगन में तुलसी का ओटला है,
उनके यहाँ लक्ष्मी का कोई अंत और पार नहीं है।



विवाह: जीवन का एक मांगलिक उत्सव

विवाह जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। इसी कारण किसी भी घर में होनेवाला यह उत्सव सारे गाँव का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। स्त्रियों के लिये तो यह एक बड़ा त्यौहार बन जाता है। नित्य-प्रति के एक ही जैसे जीवन-क्रम के बीच, यही एक ऐसी स्वर्ण-बेला आती है जब वे कुछ खुलकर हँस–बोल लेती हैं। और यों उनके शुष्क और नीरस जीवन में कुछ क्षणों के लिये आनन्द का संचार हो जाता है। नीचे के गीत में इसका चित्रण किया गया है—

थाल भर्‌या सोग मोतीड़ा, चन्दन भरी सीप जी
पैलो विनायक अमुक बाई तुनऽ पूज्यो ।।
हँसिये हँसिये, रळिये रळिये, अमुक भाई पूछऽ।
म्हारी ओ घर वाळई नार कहाँ गई ।।
हमारा अमुक भाई पाट सु बठ्या, चौक सु बठ्या ।
उनखऽ बधावणाऽ हम गया जी ।।

अर्थ–पूजा के थाल को मोतियों से संजोकर और सीप भर चन्दन लेकर विवाह के उपलक्ष में आज वह बहन श्री गणेशजी का पूजन कर रही है।

पड़ौस में वह भाई हँसते-हँसते अपनी पत्नी से पूछ रहे हैं, हे मेरी गृहदेवी ! आज तुम कहाँ चली गई थीं ?

इस पर पत्नी कहती है कि, हे प्रिय ! आज मेरे भाई विवाह के उपलक्ष्य में पाट पर चौक–पर बैठे हैं, इसीलिये मैं उन्हें बधाई देने गई थी।

जिनके घर गणेश स्वयम् शुभकार्यों में उपस्थित होते हैं।

हमारा कोई भी मांगलिक कार्य गणेश-पूजा के बिना सम्पन्न नहीं होता। लेकिन लोक-गीतों की दुनिया में गणेश केवल पूजा के माध्यम नहीं, वरन् वे एक ऐसे सहृदय पुरुष हैं जो कहीं से भी निमन्त्रण आने पर स्वयम् उनके घर पहुँचते, और वहाँ के समारोह में सम्मिलित होकर सारे कार्य को निर्विघ्न समाप्त करते आये हैं।

विवाह में गणेश-पूजा के अवसर पर गाया जानेवाला एक ऐसा ही मनोरम गीत सुनिये—

गढ़ रे गुजरात सु देव गणपति आया हो,
आई नऽ उतर्‌या ठण्डा वड़ तळऽ
पूछतऽ पूछतऽ गांव मंऽ आयां हो, नगर मंऽ आयां हो,
भाई हो मोठांजी भाई को घर कहाँ छे ?
आमी सामी वहरी नऽ लम्बी पटुसाळ हो,
केळ जऽ झपकऽ उनका आंगणा मंऽ
सीप भरी सीरीखण्ड, थाल भरी मोतीड़ा,
गणेश बधावणऽ मोटी बैण संचरिया।

अर्थ—गुजरात के गढ़ से श्री गणेशजी आये,
और आकर ठण्डे वटवृक्ष की छाया में ठहर गये।
वहाँ से वे गाँव में आये, नगर में आये,
और पूछा कि बड़े भाई का घर कहाँ है ?

उनके आमने-सामने धावा और लम्बी पटसाल बँधी है,
और उनके आँगन में केले का वृक्ष लहलहा रहा है ।
तब सीप भर श्रीखण्ड और थाल भर मोती लेकर बड़ी बहिन निकलीं,
और उन्होंने श्री गणेशजी का स्वागत किया ।

आंगन में कीचड़ किसने किया है

विवाह में दूल्हे को राजा की तरह सम्मान दिया जाता है और प्रतिदिन चार सुहागिन स्त्रियाँ मिलकर उसे स्नान कराती हैं। उसी अवसर पर गाया जानेवाला एक स्नान-गीत सुनिये—

माज नी गरज्यो सखिबाई, मेहुलड़ो सो बरस्यो आज,
आंगरणा मंऽ किच्चड़ सखिबाई, किन्न कियो जी।
मोठाजी भाई को लाड़क छोरो, सवा घड़ो न्हावऽ राज,
आंगरणा मंऽ किच्चड़ सखिबाई, उन्नऽ कियो जी।

अर्थ—बिजली भी नहीं चमकी और बादल भी नहीं गरजा है हे सखी, फिर यह पानी कैसे बरसा और आँगन में कीचड़ किसने किया है।

बड़े भाई का लाड़ला बेटा सवा घड़े दूध से स्नान कर रहा है, हे सखी! आँगन में कीचड़ उन्हीं ने किया है।

दूसरे गीत में स्नान के समय उपयोग में लाई जानेवाली वस्तुओं का वर्णन सुनिये—

गहूँ रे चणा केरो उगासणो,
आंवरी तिल्ली को तेल,
रायजादा बठ्या उगासणो,
आवो म्हारा पिताजी तुम देखो,
तुम देखो हम, सुख होय,
रायजादा बठ्या उगासणो।

अर्थ–गेहूँ और चने का उबटन है,
और उसमें तिल्ली का तेल मिला हुआ है।
रायजादा स्नान के लिये बैठे हैं,
आओ हे पिताजी, तुम हमें देखो,
तुम्हारे देखने से हमें सुख मिलता है,
रायजादा स्नान के लिये बैठे हैं।



जब पहाड़ियों की किनार से सूर्योदय होता है ।

विवाह आदि मांगलिक कार्यों के अवसर पर प्रतिदिन स्त्रियों के द्वारा गीतों के साथ हर प्रभात और सन्ध्या का स्वागत किया जाता है। चूंकि प्राचीन काल से मुर्गे का स्वर भोर होने का प्रतीक रहा है इसीलिये विवाह के अवसर पर सुबह गाये जानेवाले गीतों को "कुकड़ा" और संध्या के समय गाये जानेवाले गीतों को "सांजुली" कहा जाता है। एक ऐसा ही प्रभात-गीत सुनिये। इस छोटे-से गीत में सुदूर क्षितिज में, पहाड़ियों की किनार से उदय होनेवाले सूर्य के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है—

सुरीमल उंग्यो हो बयड़ा केरी कोर;
सुरमिल उग्यो ।।
तुम तो जागो हो अमुक भाई उमराव,
लेवो श्रीराम को नांव,
तुम तो करो हो गंगा-स्नान,
अब देवो ते गउआ को दान,
सुरमिल उंग्यो ।।

अर्थ–सुन्दर क्षितिज में पहाड़ियों की किनार से सूर्योदय हो रहा है।
हे भाई ! तुम उठो और उठकर परमेश्वर का नाम लो।
शीघ्र ही प्रभात में गङ्गा-स्नान कर लो, और फिर गौ का दान दे दो।
हे भाई ! उठो, सूर्योदय हो रहा है।

सूर्योदय का सौन्दर्य

इस गीत में सूर्योदय के समय के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए नववधू के प्रति शुभ कामना प्रगट की गई है—

कुकु का वरण सुरमिल उगियो ।
मोती का वरण अम्बो मौरियो ।।
आमुलड़ा री छाँह सिगासण जाई घड़जो ।।
सिंगासण पर बठी बहू बाळो खेलावऽ ।।
वंश बध हो अमुक भाई को जी ।।

अर्थ—कुंकुम की तरह लालिमा लिये सूर्योदय हो रहा है, और मोतियों की तरह आम्र-वृक्षों में मौर आये हुए हैं।
हे विश्वकर्मा ! उसी आम्र वृक्ष की छाँह में बैठकर सिंहासन बना दो!
सिंहासन पर बैठकर मेरी बहू बच्चे को खिलायेगी, और यों मेरे अमुक भाई के वंश की वृद्धि होगी।



प्रभात: जिसकी शोभा वर्णी नहीं जाती

प्रात.काल का समय नित्य नवीन सौन्दर्य की सृष्टि करता आया है। यदि आप बड़ी सुबह नहीं उठ सके, तो इस गीत में ही उनका आनन्द लीजिये—

सुघड़ भयो परभात, सांवरो सुघड़ भयो परभात।
तिरिया जो जागे नऽ चीर सभाले,
मरद संभाले पाग,
जोगी जागे नऽ जोग संभाले,
भोगी चांबे पान।
ब्रह्मा जागे नऽ वेद उच्चारे,
शोभा वरणी न जाये।

अर्थ—सुहावना प्रभात हो चुका, सलोना सुन्दर प्रभात हो चुका
स्त्रियाँ जागकर अपने चीर सम्हाल रही हैं,
और पुरुष अपनी पगड़ी के पेंच संवार रहे हैं,
योगी जागकर अपना योग सम्हाले हैं,
और भोगी जागकर पान चबा रहे हैं,
ब्रह्मा जागकर वेद का उच्चारण कर रहे हैं।
ऐसे सुन्दर प्रभात की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता।



सुहावना सबेरा

इस गीत में, सोते समय स्त्रियों की अस्तव्यस्त अवस्था, और उससे सावधान होने का संकेत भी सुनिये—

तुम तो जागो न हो अमुक भाई घर की नार, विहाणो हो
श्याम–सुहावणो ।
तुम तो जागों न हो बहुवर चीर संवारो, विहाणो हो
श्याम सुहावणो ।
तुम तो देवो न हो बहुवर बाजुबन्द खील, विहाणो हो
श्याम सुहावणो ।
तुम तो देवो न हो बहुबर कपिला गाय; विहाणो हो
श्याम सुहांवणो ।

अर्थ–हे अमुक भाई घर की बहिनो! उठो, सुहावना सवेरा हो चुका है।

हे बहुओ! उठो और उठकर अपने चीर संभालो, सुहावना सवेरा हो चुका है।

हे बहुओ ! अपने बाजुबन्द की कील लगाओ, सुहाबना सवेरा हो चुका है !

हे बहुओ! तुम कपिला गाय का दान दो, सुहावना सवेरा हो चुका है !

प्राचीन काल में सुबह उठकर गौदान देने का नियम था। अब तो यह महज गीत की कड़ियों में रह गया है।

हे वचन से बंधे मुर्गे बोल !

मुर्गे का बोल सुबह होने का प्रतीक माना गया है।

इस गीत में इसी भावना को व्यक्त करते हुए, मुर्गे के बोल पर समस्त देवताओं और पारिवारिक जनों के जगने का अत्यन्त ही सुन्दर चित्र संजोया गया है।

साथ ही, इसमें देवताओं और मनुष्यों के कार्यों की एकता भी सिद्ध की गई है—

शुक्र भान कुकड़ोसार बोलऽ, कोयल शब्द सुणाविया,
कुकड़ा थारा ते बोलऽ सब जागिया, जाग्या ते चारई देव
बोल वचन का रे कुकड़ा !
इनी काशी का विश्वनाथ जागिया, बद्री का बद्री-
नाथ देव,
इनी अयोध्या का रामचन्द्र जागिया, मांधाता का
ओंकार देव,
बोल वचन का रे कुकड़ा !
कुकड़ा थारा ते बोलऽ सब जागिया, जाग्या ते
चारई भाई।
इनी मजलस का मोठा भाई जागिया, कचेरी का छोटा
भाई उमराव,
इनी स्कूल का मजला भाई जागिया, चेडू खेलता
नाना नाना बाळ
बोल वचन का रे कुकड़ा !
कुकड़ा थारा ते बोलऽ सब जागिया, जागी ते चारई
सुहाय।

जब पत्नी के द्वारा पति को छुड़ाया जाता है

यह एक विनोद-गीत है। विवाह आदि शुभ-कार्यों में लड़की और जमाई आदि सम्मिलित रहते ही हैं। इसमें जमाई को विनोद का माध्यम बनाया गया है। गीत के बोल हैं—

म्हाराज आँगणा मऽ सूखी एल मौरी राज,
आली एल मौरी राज
आया ते अमुक जँवई लई गया जी,
लाओ रे ओखऽ पकड़ी नऽ
बाधो रे ओखऽ जकड़ो नऽ
पाँय लगाड़ो अमुक भाई आँगणा मंऽ जी
एतरा मऽ भाई अमुक बैग भोळई राज,
आज को चोर इराजी छोड़ी देवो जी ॥

अर्थ–आज मेरे आँगन में सूखी बेल मौरी है,
गीली बेल मौरी है,
लेकिन अमुक जमाई आये और उसे चुराकर ले गये
अरे कोई उसे पकड़कर लाओ, बाँधकर लाओ,
और हे अमुक भाई, उससे आँगन में पैर छुवाओ,
इतने में मेरी भोली बहन आई,
और बोली कि हे भाई आज के चोर को तुम छोड़ दो

और अपनी कन्या के द्वारा जमाई को छुड़ाये जाने की बात सुनकर महिलाओं में एक कहकहा गूंज उठता है!

मेरा आँगन सुहावना लग रहा है

इस गीत में अपने भाई के यहाँ से विवाह का निमंत्रण पाते ही बहिन के द्वारा अपने भाई के यहाँ चलने के आग्रह और पति के द्वारा पत्नी से किये जानेवाले मधुर विनोद के स्वर सुनिये—

अमुक जंवई आंगणो बुहारियो जी,
अमुक बैण नऽ पूरिया चौक ।
म्हारो आँगणो सुहाणो लागऽ जी ।।
अमुक बैण स्वामीजी खऽ यूं कहे जी,
स्वामी हमखऽ ते पीयर पहुंचाओ,
हमारा पीयर हळदुली जी ।
एक जाओ न गोरी हम नऽ वरजां,
बैलड़ा घर आवजो ।
एक पेरण चूनड़ी वढण गाठड़ी,
चटकता घर आवजो ।
कुकु न भरी कचोळा, तिलक करता आवजो,
एक बत्तीस पान को बीड़लो,
चाबता घर आवजो ।।

अर्थ—अमुक जँवाई ने आँगन बुहारा है,
और अमुक बहिन ने, उसमें चौक पूरे हैं।
आज मेरा आँगन सुहावना लग रहा है।
उधर—अमुक बहिन अपने स्वामी से कह रही हैं,
कि हे प्रिय, हमें अपने मैके पहुँचा दो,
देखो, आज हमारे मैके में हलदी है।

इस पर उसका पति कहता है—हे गौरवर्ण, तुम जाओ, हम तुम्हें मना नहीं करते।

लेकिन एक चूनर पहिनकर, और ओढ़नी ओढ कर;
सज-धजकर चटकते हुए जल्दी से घर आ जाना।
एक कुंकु से भरी कटोरी से तिलक करके,
और बत्तीस पान का एक बीड़ा चबाते हुए,
जल्दी से घर आ जाना!



बादलवरणी सुहावनी सन्ध्या उतर रही है

यह एक सान्ध्य-गीत है। विवाह आदि मांगलिक कार्यों के अवसर पर जब परिवार की सारी महिलाएँ एकत्रित होती हैं, तब प्रतिदिन सन्ध्या के समय निम्न गीत गाये जाते हैं। ये गीत क्या हैं, मानो अपने मांगलिक कार्य में पधारने के लिये सुहावनी सन्ध्या का स्नेहभरा स्वागत है—

हंउँ तुखऽ पूछूं अम्बा वन की हो कोयळ,
थारो सोगिटड़ो साहेब कहाँ छे।
ओ म्हारी बादळ वरणी, सगुणी सांजुली आवऽ
दिन दरियाव सोगिटड़ो वन मऽ सिधारऽ
रात अन्धारी कोयळ पास
ओ म्हारी बादळ वरणी, सगुणी सांजुली आवऽ
हंऊँ तुखऽ पूछूं म्हारी वऊ हो मोठी वऊ,
थारो लखपतिड़ो साहेब कहाँ छे।
ओ म्हारी बादळ वरणी, सगुणी सांजुली आवऽ
दिन दरियाव केशरियो कचेरी सिधारऽ
रात अन्धेरी रंगमहल मंऽ
ओ म्हारी बादळ वरणी सगुणी सांजुली आवऽ

अर्थ—मैं तुमसे पूछ रही हूँ हे आम्र-वन की कोयल,
तुम्हारा प्रियतम सुग्गा कहाँ है?
बादल वरणी, सुहावनी सन्ध्या उतर रही है।
वे दिनभर तो वन में चले जाते हैं,

लेकिन अन्धेरी रात में, कोयल के पास रहते हैं
बादल वरणी, सुहावनी सन्ध्या उतर रही है।
मैं तुमसे पूछ रही हूँ हे बहू! बड़ी बहू!
तुम्हारे लखपति प्रियतम कहाँ हैं?
बादल वरणी सुहावनी सन्ध्या उतर रही है।
वे दिन भर तो कचहरी चले जाते हैं
लेकिन अन्धेरी रात में रङ्ग-महल में रहते हैं
बादल वरणी सुहावनी सन्ध्या उतर रही है।



जब सांझ उतरती है

गौधूलि की बेला में, टिमटिमाते दीपकों के प्रकाश के बीच वृक्षों पर पक्षियों का सुमधुर कलरव, गाय-भैंसों के रेंकने-रंभाने की आवाज, दूर बहती हुई नदी का कलकल और सामने के ऊँचे मन्दिर से आनेवाला घण्टे का स्वर, सब मिलकर एक अजीब समाँ बाँध देते हैं।

साथ के गीत में एक ऐसी ही सुन्दर सन्ध्या का वर्णन सुनिये—

दिया-बत्ती हुओ रे मिलाप, वय लड़ी सांजुली ।।
गौआ बछुआ हुओ रे मिलाप, वय लड़ी सांजुली ।।
पंछी-बच्चा हुओ रे मिलाप, वय लड़ी सांजुली ।।
रात-दिन हुओ रे मिलाप, वय लड़ी सांजुली ।।
राजा-रानी हुओ रे मिलाप, वय लड़ी सांजुली ।।

अर्थ—दिये से ज्योति का मिलन हो रहा है,
सुन्दर सन्ध्या का समय है ॥
गायें बछुओं से मिल रही हैं,
सुन्दर सन्ध्या का समय है ॥
पंछी अपने घोंसलों में बच्चों से मिल रहे हैं,
सुन्दर सन्ध्या का समय है ॥
दिन रात से मिलने जा रहा है,
सुन्दर सन्ध्या का समय है ॥
इसीलिये तो राजा-रानी भी मिल रहे हैं,
सुन्दर सन्ध्या का समय है।

सोने की समाई में दीया जल रहा है

दीप जीवन का प्रतीक है। देखिये इस गीत में घर में लगाये जाने वाले दीये के सहारे पारिवारिक जीवन की समृद्धि का कैसा मनोरम चित्र संजोया गया है, मानो दीया जहाँ भी जलता है, वहीं जीवन लहलहाने लगता है—

जी हो ए ही रे दिवलो, इन्द्र लुहार न घड़ियो
जेमंऽ पुरव्यो सवा घड़ो तेल, सोन्ना की डांडो दिया हो बळऽ
जी हाँ ए ही रे दिवलो, मजघर मंऽ धर्‌यो,
मजघर बठी म्हारी सदासुहागेण माय, सोन्ना की
डांडी दिया हो बळऽ

जी हो ए ही रे दिवलो, मन्ऽ कचेरी मंऽ धर्‌यो,
कचेरी मंऽ बठ्या म्हारा समरथ बाप, सोन्ना की डांडी
दिया हो बळऽ

जी हो ए ही रे दिवलो मन्ऽ मण्डप मंऽ धर्‌यो,
मण्डप बठ्या म्हारा अर्जुन वीर, सोन्ना की डांड़ी
दिया हो बळऽ

जी हो ए ही रे दिवलो, मन्ड रसोई मंऽ धर्‌यो,
रसोई मंऽ बठी म्हारी सदासुहागेण भावज, सोन्ना
की डांडी दिया हो बळऽ

जी हो ए ही रे दिवलो, मन्ड आरती मंऽ धर्‌यो,
आरती धरऽ म्हारी सदासुहागेण बैण, सोन्ना की डांडी
दिया हो बळऽ

जी हो ए ही रे दिवलो मन्ड पटसाळ मंऽ धर्‌यो,

पटसाळ खेलऽ म्हारा नाना ताना बाळ, सोन्ना की डांडी
दिया हो बळऽ
जो हो ए ही रे दिवलो मन्ऽ सभा मंऽ धर्‌यो,
सभा मंऽ बठ्‌या छे समधी लोग, सोन्ना की डाडी
दिया हो बळऽ

अर्थ–ए जी, इस दिये को इन्द्र लुहार ने बनाया है
जिसमें सवा घडा तेल भरा हुआ है, सोने की समाई में दिया
जल रहा है।

ए जी, इस दियेको मैंने मध्य-गृह में रखा,
मध्य-गृह में मेरी सदासुहागिन माँ बैठी हुई है, सोने की
समाई में दिया जल रहा है।

ए जी, इस दिये को मैंने बैठक में रखा,
बैठक में मेरे समर्थ पिता बैठे हुए हैं, सोने की समाई में
दिया जल रहा है।

ए जी, इस दिये को मैंने मण्डप में रखा,
मण्डप में मेरे अर्जुन की तरह भाई बैठे हुए हैं, सोने की
समाई में दिया जल रहा है।

ए जी, इस दिये को मैंने रसोईघर में रखा,
रसोईघर में मेरी सदासुहागिन भावज बैठी हुई है, सोने की
समाई में दिया जल रहा है।

ए जी, इस दिये को मैंने आरती में रखा,
आरती को मेरी सदासुहागिन बहन उठा रही है, सोने की
समाई में दिया जल रहा है।

ए जी, इस दिये को मैंने पटसाल में रखा,

पटसाल में मेरे नन्हें-मुन्हें बच्चे खेल रहे हैं, सोने की समाई में दिया जल रहा है।

ए जी, इस दिये को मैंने सभा में रखा,
सभा में मेरे सम्बन्धी रिश्तेदार बैठे हैं,
सोने की समाई में दिया जल रहा है!



तुम्हारे रंगमहल पर मोर और कोयलें बोलती रहें

विवाह में वर–वधू के स्वागत एवम् सम्मानार्थ उन्हें स्वजन-परिजनों एवम् साथी-मित्रों की ओर से कुछ न कुछ भेंट दी जाती है। इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा उक्त व्यक्ति को जो आशीर्वाद दिया जाता है वह बड़ा ही सुन्दर तथा प्रेमपूर्ण होता है। उनमें से एक यों है—

तुम्हरो राज अचल रहज्यो अमुक भाई, अरु कुटुम-
परिवार जी,
तुम्हारा रंगमहल पर मोर बोलऽ, कोयळ शब्द सुणाविया
तुम्हारा भवर पलग पर लाल खेलऽ, दासी ते रिंझणो
ढोळावसे,
सुणों अहेलडी, सुणो सहेलड़ी, म्हारो आज वानो निवतियो

अर्थ–हे भाई ! तुम्हारा ऐश्वर्य और कुटुम्ब-परिवार सदैव अचल और अमर रहे।
तुम्हारा रङ्गमहल सदा भरा-पूरा रहे, और उस पर मोरा तथा कोयलें बोलती रहें।
तुम्हारी सेज पर बच्चे खेलें, और दासियाँ पंखा झलती रहें।
हे बहनो एवम् सहेलियो ! सुनो, उन्होंने आज हमारा वाना न्योता है !



जिसके रूप से महल उजियारे हैं

लोकगीतों मे विवाह के गीत अपनी मधुरिमा के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। इनमें भी "बाने" के गीतों का अपना ठाठ होता है।

हल्दी की दूसरी रात अपने साथी-मित्रों एवम् पारिवारिक जनों को लेकर जलती मशाल, जंगी ढोल और गीत गाती हुई स्त्रियों के स्वर के साथ, बड़ी ही सजधज से घोड़े पर सवार हो, जब दूल्हे का बाना निकलता है, तो सचमुच "दूल्हा राजा" शब्द अपनी सार्थकता पा जाता है।

तब समस्त स्नेही जनों की ओर से उसके सम्मानार्थ कुछ न कुछ "बाना" (भेंट या आभूषण) दिया जाता है, और स्त्रियों द्वारा बाना रखनेवाले भाई को बधाई! ये बधाई-गीत ही निमाड़ी में "निव्हा-लियों" के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। निव्हाली याने स्नेहावलियाँ।

ये गीत क्या हैं, इनमे विवाह के समय समस्त हर्ष-उल्लास और आनन्द भरा होता है। उन्हें यदि हास्य, विनोद और शृङ्गार की त्रिवेणी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। सचमुच, इस अवसर पर आदमी भेंट देकर भी गाली खाने में आनन्द का अनुभव करता है।

देखिये, एक बाना रखनेवाले भाई से स्त्रियाँ पूछ रही हैं—

"हऊ तुखऽ पूंछूं अमुक भाई, थारी जोय बताव रे,
राणा ठाकुर।
पान सरीखी पातळई है, चोळई मंऽ छिप जाय रे,
राणा ठाकुर।
इलायची सरीखी मरोकणई रे, डब्बा मंऽ छिप जाय रे,
राणा ठाकुर।

नीर सरीखी निरमळई रे कचोळऽ छिप जाय रे,
राणा ठाकुर।
चाद सरीखी उजळई रे, महला मंऽ उज्भाव रे,
राणा ठाकुर।

अर्थ हम तुमसे पूछ रही है, हे भाई! अपनी स्त्री तो दिखाओ। शायद वह पान की तरह नाजुक है जो अँगिया मे छिप जाती है, या इलायची की तरह सुवासित है जो डिब्बे में खोई रहती है, और वह नीर की तरह निर्मल है, जो कटोरे में नहीं दिखती, और वह चाँद की तरह उज्ज्वल होगी, जिससे सारा महल उजियारा है।

सुनते ही बेचारा पति खिसियाकर रह जाता है!!



सुकुमार तरुणी

घुमड़कर उठनेवाले वर्षा के बादलों की तरह अपने घर के सामने से निकलनेवाले बाने को देखने की हड़बड़ाहट में एक तरुणी फिसलकर गिर जाती है।

इस गीत में उसकी सुकुमारिता और उसके स्वामी के पौरुष पर बड़ा तीखा व्यंग है।

गीत है—

दल बादळ उमड़यो रे, मोठा रे भाई का आंगण मऽ
ओकी पतलड़ी निसरी रे, आंगण मऽ रपट पड़ी।
ओको लउंग को बटवो रे, दाणाऽ रे दाण बिखर गयो।
ओको छोटो देवर दौड़यो रे, पटा रे पट बीण लिया।
ओको समरथ स्वामी आयो रे, आधा रे आध बाट लिया॥

अर्थ—उस भाई के आंगन में दल-बादल की तरह भीड़ उमड़ रही है।
उसकी नाजुक स्त्री उसे देखने निकली, तो आंगन में फिसल पड़ी।
उसके बटुये के लौंग छार-छार होकर बिखर गये।
उसका छोटा देवर आया तो उसने उन्हें चुन-चुनकर बीन लिया।
लेकिन उसके समर्थ स्वामी आये, और उन्होंने उन्हें आधों-आध बाट लिया॥

प्यार और मस्ती के वे मधुर क्षण

बाने के गीतों में नव-दम्पति के माध्यम से अल्हड़ प्यार और मस्ती के अद्भुत चित्र संजोये गये हैं। उन्हीं में से एक आप भी सुनिये—

लाड़ी बाई की कड मंऽ लउंग को बटुओ।
सेरी गली वळ खाय।
तलगस आया म्हारा अमुक भाई उमराव,
पकड़कर बैयाँ धरी।
छोड़ो छोड़ो रे साहेब म्हारो छेव,
फाटऽ म्हारी सोनऽ चुनरी।

अर्थ–नववधू की कमर में लौंग का बटुवा है।
और वह संकरी गलियों में इठलाती हुई घूम रही है।
इतने में मेरे अमुक भाई आये।
और उन्होंने उसकी बाँह पकड़ ली।
इस पर वह अनुनय के स्वर में बोली—
हमारा पल्ला छोड़ दो, ए जी हमारा पल्ला छोड़ दो।
देखो, हमारी सुनहरी चूनर फट जावेगी।



दुलहन को देखकर दूल्हा रो दिया !

विवाह में लग्न के बाद, दूल्हे को लेकर कुछ मधुर विनोद किया जाता है। ऐसे ही अवसर पर स्त्रियों से घिरे दूल्हे की दयनीय अवस्था का वर्णन सुनिये—

लाड़ी खऽ देखी नऽ दुल्लव आयो रे रड़ी !
लाड़ो बणी रे जैसी फूल की छड़ी !
सब सुहागेण मण्डपऽ खड़ो, कोई न लगई हुसे 'कानखड़ी'
कोई सुहागेण आगऽ वढी, ऐखऽ तो जलम की ह्वाणऽ पड़ी,
लाड़ी खऽ देखो नऽ दुल्लव आयो रे रड़ी !
लाड़ो बणी रे जसी फूल की छड़ी !

अर्थ–दुलहन को देखकर दूल्हा रो दिया !
दुलहन ऐसी बनी है, जैसे फूल की छड़ी हो !
सब सुहागिनें मण्डप में खड़ी थी,
एक ने कहा "अरे ! इसे किसीने कागुच्ची लगा दी होगी,"
इतने में दूसरी बोली—"अरे ! इसे तो जनम से रोने की आदत पड़ी है।"
दुलहन को देखकर दूल्हा रो दिया !
दुलहन ऐसी बनी है, जैसे फूल की छड़ी हो !



दल-बादल की ओढ़नी-जो बिना उढ़ाये ही रह गई !

लोक-गीतों में अविवाहित व्यक्ति को लेकर भी मधुर विनोद संजोये हुए हैं। देखिये एक भाई की जब कहीं भी सगाई नहीं हो पाती, तो वे खीझकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की तरह, विभिन्न कारीगरों को अपने लिये एक नवीन नारी गढ़कर लाने का आदेश देते हैं।

लेकिन उनकी कल्पना लोक की स्वप्निल नारी जब प्रत्यक्ष जगत में उतरती हैं, तो किस तरह उनके स्वप्न छार-छार होकर बिखर जाते हैं—उसका भी वर्णन सुनिये—

दल-बादल की बन्नी वढ़ाऊँ।
सुतर्‌या भाई तू म्हारो भाई,
लाकड़ा की जोरू घड़ी लावजे रे भाई।
लाकड़ा की जोरू ख चूल्हऽ बठाड़सा।
उड़ी गयो फुनग्यो न बळई गई बाई ॥ १ ॥
दल बादळ की वन्नी वढ़ाऊं।
कुम्हार्‌या भाई तू म्हारो भाई,
माटी की जोरू घड़ी लावजे रे भाई।
माटी की जोरू ख वलेण बठाड़सां।
आइ गयो मेहुलो धुलई गई बाई ॥ २ ॥
दल बादल की बन्नी वढ़ाऊ।
पिंजारा भाई तू म्हारो भाई,
पूणी की जोरू घड़ी लावजे रे भाई।
पूणी की जोरू ख चौक वठाड़सां।
आइ गया वाटळयो न उड़ी गई बाई ॥ ३ ॥

दल बादळ को बन्नी वढ़ाऊं ।
सौनर्या भाई तू म्हारो भाई,
सोन्ना की जोरू घड़ी लावजे रे भाई ।
सोन्ना की जोरू ख महेल बठाड़सां ।
आई गया चोर न लई गया बाई ।। ४ ।।

दल वादळ की बन्नी वढ़ाऊं ।
वजाजी भाई तू म्हारो भाई,
कपड़ा की जोरू बणाई लावजे रे भाई ।
कपड़ा को जोरू ख पेटी बठाड़सां ।
आई गया ऊंदरा न खाई गया बाई ।। ५ ।।

दल बादळ की बन्नी वढ़ाई ।

अर्थ–दल बादल की ओढनी उढ़ाऊँगा ।
हे सुतार भाई तू, मेरा भाई है ।
तू मुझे लकड़ी की एक स्त्री बनाकर ला देना रे भाई ।
लकड़ी की स्त्री को मैं चूल्हे के पास बैठाऊँगा,
लेकिन चिनगारी उड़ी और स्त्री जल गई ।। १ ।।

हे कुम्हार भाई, तू मेरा भाई है ।
तू मुझे मिट्टी की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई ।
मिट्टी की स्त्री को मैं (चूल्हे से दूर) पानी की धार के नीचे बैठाऊँगा ।
लेकिन पानी आया और स्त्री धुल गई ।।२।।

हे पिंजारे भाई, तू मेरा भाई है ।
तू मुझे पौनी की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई ।

पौनी की स्त्री को मैं (चूल्हे और पानी से दूर) चौक में बैठाऊँगा,
लेकिन तूफान आया और स्त्री उड़ गई ॥ ३ ॥

हे सुनार भाई, तू मेरा भाई है।
तू मुझे सोने की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई।
सोने की स्त्री को मैं महल में रखूँगा।
लेकिन चोर आये और स्त्री को चुरा ले गये ॥ ४ ॥

अन्त में खीझकर इस निश्चय पर आता है कि सबसे अच्छी तो कपड़े की गुड़िया-स्त्री। अतएव वह कहता है—
हे बजाजी भाई, तू मेरा भाई है।
तू मुझे कपड़े की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई।
कपड़े की स्त्री को मैं पेटी में बन्द करके रखूँगा।
लेकिन चूहे आये और स्त्री को खा गये ॥ ५ ॥

यूँ बेचारे की दल-बादल की ओढ़नी बिना उढ़ाये ही रह गई।



मेरी चांदनी पर चौसर खेलने के लिये आना

वर-वधू को लेकर विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले "वनरा-गीतों" का भी अपना निराला ठाठ होता है। इन्हें यदि हास्य, विनोद और शृङ्गार की त्रिवेणी कहें तो भी अत्युक्ति नहीं।

देखिये एक गीत में जब "वर" अपनी अतुल सम्पत्ति का जिक्र करते हुए "वधू" से अपनी चांदनी पर चौसर खेलने के लिये आने का निमंत्रण देता है, तो विनोद भरे स्वर में वधू पूछती है–

वना तुम किनका बुलाया रे जल्दी आया।
वनी थारा पिताजी न लिख्यो कागज भेज्यो,
वनी हम उनका बुलाया रे जल्दी आया॥
बनी म्हारा हात्थी झूलऽ द्वार,
म्हारा यहाँ घोड़ा की घमसाण,
म्हारी चाँदणी पर चौसर खेलणऽ आवजो॥
वना म्हारो हलदी भर्यो अंग,
म्हारी पाटी मंऽ गुळाल,
म्हारी चोटी मंऽ अत्तर,
बना म्हारी चाँदणी पर चौसर खेलण आवजो॥

अर्थ–हे प्रिय, तुम किनके बुलाने से मेरे यहाँ जल्दी आ गये? इस पर वर स्वाभिमान भरे शब्दों में उत्तर देता है कि—हे प्रिय, तुम्हारे पिताजी ने मुझे पत्र लिखकर बुलाया था। मैं उनके बुलाने से तुम्हारे यहाँ जल्दी आ गया।
फिर अपनी अतुल सम्पत्ति का वर्णन करते हुए वह कहता है कि–हे प्रिये, मेरे दरवाजे पर हाथी झूलते हैं और घोड़ों की तो मेरे

यहाँ कमी ही नही हैं। इसलिये आज तुम मेरी चाँदनी पर चौसर खेलने के लिये अवश्य आना।

इस पर मुसकराते हुए वधू अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए, एक अजीब अन्दाज से अपने यहाँ आने का स्नेहामंत्रण देते हुए कहती है-

हे प्रियतम, अभी मेरे अंग में हलदी लगी हुई है,
मेरी मांग में गुलाल डला हुआ है,
मेरी चोटी इत्र से भीगी हुई है।
मैं तुम्हारे यहाँ कैसे आऊँ?

आज तो तुम ही मेरी चाँदनी पर चौसर खेलने के लिये आ जाना।



पायलों की आवाज

यह भी एक बनरा-गीत है। इसमें सहेलियाँ नववधू को घेर-कर, विनोद में उससे कहती हैं—

बिन्दी तो तुम पैरो हो वनीजी,
तुमखऽ वन्दड़ाजी बुलावऽ ।।
थारा रङ्गमहल कसी आऊँ रे बना,
म्हारा झाँझरिया जो बाजऽ ।।
म्हारा झाँझरिया की रुणुक-झुणक,
म्हारा पिताजी सुणी लीसे ।।
थारा पिताजी की गाळई हो वनी,
मखऽ बहुतज प्यारी लागऽ ।।

अर्थ–हे दुलहन, तुम बिन्दी तो लगा लो,
देखो, तुमको प्रियतम बुला रहे है।
इस पर मुसकराते हुए, सुहावना वहाना बनाते हुए,
दुलहन कहती है—
हे प्रियतम, मैं तुम्हारे रङ्गमहल में किस तरह आऊँ ?
मेरे पाँवों की पैंजनियाँ आवाज जो करती हैं।
यदि मेरी पायलों की रुनुक-झुनुक ध्वनि
मेरे पिताजी ने सुन ली तो ?
इस पर, व्यंग भरे शब्दों में प्रियतम उत्तर देते हैं—
तुम्हारे पिताजी की गाली तो मुझे बहुत ही प्यारी लगती है,
तुम आ भी जाओ !



प्रतीक्षा के वे क्षण

विवाह में मण्डप के दिन वर माता के भाई की ओर से सारे कुटुम्बी-जनों के लिये कपड़ों की भेंट लाई जाती है। भाई अमीर हो या गरीब, कपड़े तो लायेगा ही। भला अपनी बहन के लड़के के विवाहोत्सव में क्या वह इतना भी करने से रहा ?

इधर बहिन के लिये भी वह बड़े आनन्द का दिन होता है। एक ओर लड़के का विवाह, और दूसरी ओर भाई की भेंट। इससे अधिक सुख और सौभाग्य की बात उसके लिये और क्या हो सकती है ? ससुराल में वह सर्व सुखसम्पन्न गृह-स्वामिनी तो होती है, किन्तु किसी की अनुचरी पत्नी के रूप में। उसके जीवन में यही एक ऐसा दिन आता है जिस दिन वह गर्व से कह सकती है कि वह गृहस्वामिनी या पत्नी होने से पहिले अपने भाई की बहिन है। उसके अपने भी अच्छे भाई हैं, जिनका घर सदा उसके लिये खुला रहता है और जो उसे कभी नहीं भूलते। यही कारण है कि उस दिन की भेंट अपने आप में एक बहुत बड़ा मूल्य रखती है। फिर यदि कपड़े अच्छे हुए तो कहना ही क्या है ! लेकिन यदि किसी का गरीब भाई कच्चे सूत का तार भी ले आये तो वह भी बहिन के लिये कम मूल्यवान नहीं होता। क्योंकि उपहार की कीमत पैसों से नहीं, स्नेह से आँकी जाती है।

भाई-बहिन के पवित्र स्नेह से सम्बन्धित एक ऐसा ही गीत देखिये—

सुणजो म्हारा सगुण साहेब जी, म्हारा पियर पत्रिका भेजजो।
एक आई गयो मेहलो न भीगी गयो कागद, गोरी को

संदेशो रही गयो ॥
हुई गई रे वीरा म्हारा मण्डप की बिरियां, सासूजी मसलो बोलिया ।
परसो न हो बहुवर मुट्ठीभर चोखा, उपर मुट्ठो खांड की ॥
हुई गई रे वीरा म्हारा मण्डप खऽ वार, नणंदजी मसलो बोलिया ।
एक पेरो न हो भावज दक्षिणा रो चीर, अगिया जो पेरो जड़ाव की ॥
एक बेडुलो लई न पनघट चाली, बेडुलो जो धरियो सरवर पाळ ।
चोमळ टांगी चम्पा डाल, धमकी न रे वीरजी की गाड़िला ॥
धमकी न रे घूंघर माल, एक झपकी न रे म्हारा वीराजी की पाग,
चमक्यो रे भावजजी रो चूडीलो ॥
एक झटपट हो गोरी घर खऽ आई, विराजी खऽ दिया समझाई न ।
एक वीराजी न हो भेज्यो वहण खऽ संदेशो, केतरीक लाग पेरावणी ॥
ससरा खऽ रे वीरा म्हारा सेलो न पाग, सासू खऽ पोयचो पेरावजो ।
जेठ खऽ रे वीरा म्हारा सेलो न पाग, जेठाणी खऽ चूनर पेरावजो ॥
देवर खऽ रे वीरा म्हारा सेलो न पाग, देराणी खऽ चून्दर पेरावजो ।

एक नणंद खऽ दक्षिणा रो चीर ॥
बौणई खऽ रे वीरा म्हारा पांचई कपड़ा, बहण खऽ पेळो पेरावजो।
एक भाणेज खऽ हो अंगलो न टोपी, पड़ोसेण खऽ कापड़ो देवाड़जो॥
जात खऽ रे वीरा म्हारा मुट्ठीभर चांवल, गांव मऽ तमोल बटाड़जो।
भली करी रे म्हारा माड़ी का जाया, सासू नणद मऽ करी उजळई।"

अर्थ–अपने बच्चे के विवाह का निश्चय हो जाने पर, पत्नी अपने पति से अनुनय-विनय करते हुए कहती है कि "हे मेरे अच्छे प्रियतम! मेरी एक बात सुन लेना, मेरे मैके अवश्य पत्रिका भिजवा देना ।

उसके पति अपनी ससुराल पत्रिका तो भिजवा देते हैं, लेकिन इसी बीच राह में पानी बरस जाने से पत्र भींग जाता है और पत्नी का सन्देशा रह जाता है।

इधर मण्डप की घड़ियाँ आ पहुँचती हैं। बहन का सारा दिन व्यग्रता और प्रतीक्षा में बीतता है लेकिन जब उसके भाई नहीं आ पाते तो वह मन ही मन गुनगुनाने लगती है—"हे मेरे भाई! मण्डप का समय हो गया है तुम अभी तक क्यों नहीं आये? देखो सास मुझे ताना मार रही है कि "अपने भाई को मीठे चावल परोसो और ऊपर से एक मुट्ठी शक्कर भी डाल देना!"

उधर से ननद कह रही है कि "भौजाई! खड़ी क्यों हो, पहनो न? तुम्हारे भाई ये दक्षिणी साड़ी लाये हैं, और ऊपर

से जड़ाव की अंगिया तो बड़ी ही अच्छी मालूम होगी !" किन्तु मैं क्या करूँ ?

अन्त में लाचार-सी होकर वह सिर पर बटलोई ले पनवट की ओर चल देती है। बटलोई को तालाब के किनारे रख ज्यों ही वह चोमल को एक चम्पा की डाल पर टाँगने लगती है, कि उसे अपने भाई की बैलगाड़ियों के आने की गड़गड़ाहट सुनाई देती है, और उसे अपने भाई की झलकती हुई पगड़ी तथा भावज का चमकता हुआ चूड़ा भी दिखाई देता है।

फिर तो वह बिना एक क्षण भी वहाँ रुके घर आ पहुँचती है। इतने में भाई भी आकर बहिन के पास सन्देशा भिजवाते हैं कि "बहिन, मै आ गया। बताओ न ? अब यहाँ किसको क्या-क्या देना है ?"

इस पर बहिन अपने भाई को सारी तफसील समझाते हुए कहती है—

"ओ मेरे भाई ! मेरे जो ससुर हैं न, उन्हें रेशमी दुपट्टा और अच्छी पगड़ी बँधवाना तथा मेरी सास को कीमती धोती देना। मेरे ज्येष्ठ और देवर को भी रेशमी दुपट्टा और पगड़ी बँधवाना, तथा जेठानी और देवरानियों को सुन्दर-सी चूनर देना। और हाँ, ननद को दक्षिण का चीर पहिनाये बगैर नहीं रहना। तथा हे भाई ! अपने बहनोई को सिर से पाँव तक पाँचों वस्त्र पहिनाना।"

इसी बीच वह अपने आप पर आकर रुक जाती है। वह अपने भाई से क्या ले ? नहीं नहीं, उसे कुछ नहीं चाहिये।

उसे तो भाई का स्नेह चाहिये। अतएव वह कह उठती है कि "हे भाई! तुम्हारे भानजे को सिर्फ कुरता–टोपी दे देना तथा मुझे तो केवल एक स्नेह से निर्मित कच्चे सूत का पीला वस्त्र भर उढ़ा देना और मुझे कुछ नहीं चाहिये।

हाँ, मेरी जो पास-पड़ोसिनें हैं न, उन्हें एक-एक कंचुली का वस्त्र दे देना। जाति को मुट्ठी भर चावल खिला देना, और सारे गाँव में खारक बँटवा देना।

भाई! आज तुमने आकर मुझे सास–ननद के सामने मुँह दिखाने लायक रखा। ओ मेरे सहोदर भाई! यह तुमने बहुत अच्छा किया।"



हे हंस ! तुम उड़कर जाओ

यह भी एक मण्डप-गीत है। इसमें मण्डप के दिन जब भाई को आने में देर हो जाती है तो बहिन का मन इतना चंचल हो उठता है कि वह आकाश में उड़नेवाले एक हंस के जरिये अपने भाई के आने का संदेश मंगाती है।

साथ ही इसमें बहिन के अटूट प्रेम और अडिग आत्मविश्वास का भी दर्शन कराया है—

उड़ी हंस, उड़ी हंस, म्हारा पीयर जाजो।
न म्हारा पीयर की पत्रिका लावजो॥
बड़ मंऽ जड़ होय तो कोपल भी आवऽ।
घहूं मंऽ कस होय तो रोटी भी आवऽ।
कपास मऽ कस होय तो सूत जी निसरऽ।
बइण मऽ गुण होय तो वीराजी आवऽ॥

अर्थ–हे हँस, तुम उड़-उड़कर मेरे पीहर जाओ,
और वहाँ से मेरे भाई के आने का सन्देश ला दो॥
फिर वह दृढ़ निश्चय के स्वर में कहती है—
यदि वटवृक्ष में बड़ें हो तो कोंपलें भी अवश्य आती हैं,
और यदि कपास में कस हो तो सूत भी निकलता ही है।
इसी तरह यदि कुछ बहिन मे गुण होंगे तो
मेरे अच्छे-से भैया भी आयेंगे ही और अवश्य आयंगे।



जिसके भाई चूनर लेकर आयेंगे

यह भी एक मण्डप-गीत है। किन्तु यह एक अत्यन्त गरीब भाई को सम्बोधित कर लिखा गया है, जो कहीं दूर देश में बसता है। वह गरीब है तो क्या हुआ, सामाजिक रीति-रिवाजों को तो मानना ही होगा। इसीलिये, वह अपने भाई के पास गरीब होने पर भी भेंट लेकर आने का संदेशा पहुँचाती है। कारण, मण्डप में भाई के द्वारा भेंट लेकर न आने से न सिर्फ उसे ही अपमानित होना पड़ता है, वरन् उसके सारे कुटुम्ब की भी हँसी होती है, जिसे वह बहिन होने के नाते सहन नहीं कर सकती। इसमें आप सामाजिक नियमों की कठोरता, गरीबी की असीम वेदना और भाई-बहिन के पवित्र स्नेह का दर्शन कर सकते हैं—

बइण का आँगणा मं पिपळई रे वीरा चूनर लावजे ।।
लाव तो सब सारू लावजे रे वीरा, नई तो रहेजे
अपणा देश ।
माड़ी जाया, चूनर लांवजे ।।
सपत थोड़ी, विपत घणी हो बइण, कसी पत आऊँ
थारा द्वार ।
माड़ी जाई, कसी पत आऊँ थारा द्वार ।।
भावज रो कंकण गयण मेलजे रे वीरा, चूनर लावजे ।
असी पत आवजे म्हारा द्वार, माड़ी जाया, चूनर
लावजे ।।

अर्थ- बहिन अपने भाई के पास सन्देशा पहुँचाती है कि "हे भाई ! तुम्हारी बहिन के आँगन में एक पीपल का वृक्ष है। (उसी घर से तुम्हारे भानजे की शादी हो रही है) अतः तुम

अपनी बहन के यहाँ चूनर लेकर अवश्य आना।
लेकिन याद रखना, चूनर लाओ तो सबके लिये लाना।
नहीं तो हे मेरे भाई! अपने घर ही रहना।"

इस पर भाई सन्देश पहुँचाता है कि "हे मेरी बहिन, मेरे पल्ले सम्पत्ति थोड़ी और विपत्ति अधिक है। मैं आऊँ तो किस तरह तुम्हारे दरवाजे आऊँ?"

तब बहिन कहती है कि—"हे भाई! मेरी तो भावज है न, उसके कंकण को किसी महाजन के यहाँ गिरवी रख देना, और इस तरह चूनर लेकर अवश्य आना।

ओ मेरे सहोदर भाई! इस तरह तुम अपनी बहिन के यहाँ अवश्य आना।"



जिसके पिता रेशमी साड़ी लायेंगे

इस गीत में एक बड़े घर की सुकुमार तरुणी द्वारा अपने लिये लाई जाने वाली भेंट का सुन्दर वर्णन है। मण्डप का दिन आते ही उसका मन फूले नहीं समाता और वह मन ही मन अपने पिताजी द्वारा लाई जाने वाली भेंट की कल्पना करने लगती है। इसमें न सिर्फ वस्त्र स्वावलम्बन का ही किन्तु महीन से महीन वस्त्र-निर्माण कला का भी दर्शन कराया कराया गया है। गीत इस प्रकार है—

आवसे हो म्हारो लखपति वाप,
साड़ी लावसे रेशमी जी ॥
हऊँ नापूं तो हात पचास,
तोलूं तो तोला तीस जी ॥
हऊँ धरूँ तो तरसऽ म्हारो जीवड़ो,
पेरूँ तो खिरऽ मोतीड़ा जी ॥
आवसे हो म्हारो लखपति वाप,
साड़ी लावसे रेशमी जी ॥

अर्थ—आज मेरे पिताजी आयेंगे, मेरे लिये एक रेशमी साड़ी लायेंगे। वह इतनी बड़ी होगी कि यदि मैं उसे नापूँ तो पूरे पचास हाथ निकलेगी, किन्तु इतनी महीन होगी कि तौलने पर तीस तोले से अधिक नहीं उतरेगी।

वह इतनी सुन्दर होगी कि यदि मैं उसे पहिनूं, तो उसके मोती बिखरेंगे, किन्तु यदि रख दूँ तो मेरा जी नहीं मानेगा।

लेकिन कुछ भी हो वह सोचती है—आज मेरे पिताजी अवश्य आयेंगे और मेरे लिये रेशमी साड़ी जरूर लायेंगे।

जिसके उतावले नयन नहीं मानते

इस गीत में नारी-हृदय का दर्शन कराया गया है। उसे मण्डप के दिन भेंट आने या न आने की उतनी चिन्ता नहीं है जितनी अपने आत्मीय-जनों से मिलने की व्यग्रता है।

गीतके बोल हैं—

थारा पिताजी लावऽ तो पेरजे हो गोरी।
नई तो थारा भूल्यो मन समझावजे।।
म्हारा मनड़ा खऽ तो पियाजी राखू हिरदा पाय।
पर नयन उतावळा नी मानता।।

अर्थ–मण्डप का समय नजदीक आ जाने पर जब पत्नी अपने मायके वालों की प्रतीक्षा में अत्यन्त व्यग्र और चिन्तित हो उठती है, तो उसका पति कहता है कि "हे प्रिये! यदि तेरे पिताजी आयें और चूनर लाये, तो पहिन लेना, नहीं तो अपने भूले हुए मन को यों ही समझा लेना।" इस पर पत्नी कहती है कि "हे प्रिय! मैं अपने मन को तो हृदय में छुपाकर रख लूँगी लेकिन मेरे ये उतावले नयन नहीं मानते, उनका मैं क्या करूँ?"



जब पूर्वजों के पास भी विवाह का सन्देश भेजा जाता है

यह मण्डप के समय गाया जाने वाला एक स्मृति-गीत है। विवाह के अवसर पर मण्डप के दिन समस्त पारिवारिक जन एक ही मण्डप की छत्रछाया में एकत्रित होते एवम् परस्पर मिलते हैं। तभी गृहस्वामी को अपने समस्त कुटुम्बीजनों के साथ बैठाकर, सगे-सम्बन्धियों द्वारा उन्हें कपड़ों की भेंट दी जाती है।

सुख के ऐसे क्षणों में अपने पूर्वजों की याद हो आना स्वाभाविक है, और उसी याद को लेकर स्त्रियाँ रोने लगती हैं।

तभी निम्न गीत गाया जाता है। इसमें, स्त्रियों द्वारा एक उच्चाकाश में उड़ने वाली गीधनी के जरिये अपने पूर्वजों के पास विवाह में सम्मिलित होने का जो निमन्त्रण भेजा जाता है और वहाँ से उनके द्वारा जो जवाब दिया जाता है, उसका अत्यन्त ही करुण वर्णन है। गीत क्या है, मानव-मन की लाचारियों का एक सजीव दर्शन है—

सरग भवन्ति हो गिरधरनो, एक सन्देशो लई जाव ।।
सरग का अमुक दाजी खऽ यो कयजो, तुम घर अमुक को ब्याव ।।
जेम सरऽ ओमऽ सारजो हो, हमारो तो आवणो नी होय ।।
जड़ी दिया व्रज किवाड़, अग्गळ जडी लुहा की जी ।।

अर्थ—हे स्वर्ग तक उड़ने वाली गीधनी!
तुम मेरा एक संदेशा लेती जाओ।
स्वर्ग में स्थित हमारे अमुक पूर्वज से यह कहना,

कि तुम्हारे घर अमुक लड़के का ब्याह है उसमें तुम्हें बुलाया है।

इस पर उसी गीधनी के हाथ वे संदेशा भेजते हैं कि हे गीधनी!

तुम उनसे जाकर कहना कि—

"वे जिस तरह भी हो इस कार्य को निपटा लें।

हमारा तो आना नहीं हो सकेगा।

कारण, हमारे आने की राह मृत्यु-रूपी विशालकाय दरवाजों से बन्द है जिनमे लोहे की बड़ी-बड़ी अरगलायें पड़ी हुई हैं।"



जब कन्या मां से विदा होती है

जिस कन्या की विदाई को लेकर कण्व जैसे महर्षि का हृदय भी काँप उठा था, उसी कन्या की विदाई से सम्बन्धित एक विवाह-गीत सुनिए।

गणेश-पूजा से लगाकर "लग्न-बन्धन" के समय तक कन्या-पक्ष के प्राय. सभी आत्मीय जन विवाह की दौड़-धूप, बारात के स्वागत-सत्कार एवम् स्वजन-परिजनों से मिलने जुलने की खुशी में ही निमग्न रहते हैं। लेकिन ज्यों ही लग्न का एक क्षण "वधू" को अपने कुटुम्ब से छुडा दूसरे कुटुम्ब से जोड़ देता है, तो सारे घर में एक अजीब सुस्ती छा जाती है।

और माँ की आँखों में कन्या के विवाह के क्षण तक का सारा जीवन घूमने लगता है। स्वयं कष्ट सहकर जिसे उसने जन्म दिया और अपने आंचल का दूध पिलाया, सर्द-गर्म हवा के झकोरों से जिसकी रक्षा की, खानपान में पथ्य और परहेज कर जिसे स्वास्थ्य दिया, अपनी दृष्टि की तरह जिसे दूर भेजकर भी अपने-आप से बाँधे रखा, अपनी उसी कन्या का जब विदाई का क्षण आता है तो माँ का मन काँप उठता और वह सोचने लगती है—

इनी धरती आदो नीपज्यो, आदा का चिकणा ते पान जी।
इनी कूक दुल्लवजी नीपज्या, माँगऽ छे कन्या को दानजी॥
कन्या को दान ते बाबुल वहोत दोयलो, मूरख सी दियो नो जाय।
लड़की कांय खऽ पाळई रे बाबुल, कांय खऽ पोसी, कांय खऽ पायो जी काचो दूध॥
माया खऽ पाळई रे बाबुल, माया खऽ पोसी, माया खऽ पायो काचो दूध जी।

चरवो भी दियो रे बाबुल, गङ्गाळ भी दीनी, तो भी
नी समझ या दयालजी ।

(यहाँ क्रमशः धोती, कोट, साफ, जनेऊ, अंगूठी, माला आदि का नाम लेकर इसी पंक्ति को दोहराया जाता है ।)

घर की मांडण बेटी अमुक बाई दीनी, तवऽ जाई
समझया दयालजी ।
आला नीळा बाँस की बाँसरी, वो भी बाजती जाय,
अमुक भाई की बईण छे लाडली, वो भी सासरऽ जाय
पछा फिरो, पछा फिरो लाड़ीबाई, पिताजी खऽ देवो
आशीस
खाजो पीजो पिताजी, राज करजो जिवजो करोड़
बरीस ।।
छोड्यो छे मायको माहिरो, छोड्यो पिताजी को लाड़
छोडी छे भाई केरी भावटी, छोड्यो फुतळयारो ख्याल ।
छोड्यो छे सई केरो सईपणो लाग्या दुल्लवजी
का साथ ।

अर्थ—इसी धरती में से अदरक निकला जिसके चिकने और सुन्दर पत्ते हैं ।

और इसी कूख से दूल्हे का जन्म हुआ, जो कन्या का दान माँग रहे हैं ।

लेकिन कन्या का दान तो हे माई ! बहुत कठिन है, वह मुझ जैसी मूर्ख से नहीं दिया जायेगा ।

मैंने किसलिये लड़की का पालन-पोषण किया और किसलिये उसे कच्चा दूध पिलाया।
शायद मैंने माया का ही पालन-पोषण किया, और माया को ही कच्चा दूध पिलाया।

अजी मैंने उन्हें चरखा भी दिया और गङ्गाल भी दी, लेकिन तब भी वे नहीं माने।

जब मैंने उन्हें अपने घर की लाड़ली बेटी दी, तब जाकर कहीं वे दयालु समझे हैं।

इसी बीच वर वधू की विदाई की शुभ घड़ी आ पहुँचती है। तब सारी स्त्रियों के साथ, माँ को भी उसे कुछ दूर तक पहुँचाने जाना होता है। ऐसे में गीत की कड़ियाँ आगे चलती हैं—

जिस तरह नीले और गीले बांस की बाँसुरी को भी बजना ही होता है, उसी तरह अपने भाई की अत्यन्त सुकुमार लाड़ली बहिन को भी आज ससुराल जाना ही होगा।
"हे दुलहिन! एक बार पीछे घूमकर तो देखो! देखो तुम्हारे पिताजी खड़े हैं, उन्हें आशीष तो देती जाओ।

इस पर भीगी आँखों मानो लड़की का रोम-रोम आशीर्वाद देने लगता है कि 'हे पिताजी, तुम राजा की तरह सुखी और सम्पन्न होओ, और तुम्हारी करोड़ों बरस की आयु हो।'

और तब वर वधू बढ़ते ही जाते हैं आगे की ओर। और तभी मानो गीत की कड़ियों में और भी दर्द घोलते हुए स्त्रियाँ कहने लगती हैं:

"हे बहिन! तूने माँ की गोद छोड़ी, पिताजी का लाड़-प्यार छोड़ा, भाई की बाँह छोड़ी, और खिलौने का खेलना

भी छोड़ दिया। अरे, सब सहेलियों के साथ का सहेलीपन भी छोड़कर, आज 'दूल्हा' के साथ कैसे जा रही हो?

लेकिन कुछ भी हो, दोनों दल दो विभिन्न दिशाओं की ओर बढ़ते जाते हैं, और यों, 'माँ' से 'बेटी' अलग हो जाती है!

जब कन्या पराई हो जाती है

यह एक विवाह-गीत है। अत्यन्त लाड़-प्यार से पाली गई कन्या के जब विवाह का अवसर आता है तो माँ के मन में उथल-पुथल मच जाती है, और वह समझ नहीं पाती कि वह क्या करे।

साथ के गीत में, माँ के मन की इसी अवस्था का वर्णन सुनिये—

बइण जिन घर आनन्द बधाओ ॥
हऊँ तो अचरज मन माही जाणती, हऊँ तो बाग लगाऊँ दुई चार,
ओ तो आई मालण, फुलड़ा लई गई, म्हारो बाग परायो होय,
हऊँ तो अम्बा लगाऊँ दस पाँच,
ओ तो आई कोयळ केरी लई गई, म्हारो अम्बो परायो होय,
हऊँ तो पुत्र परणाऊँ दुई चार,
ओ तो आई थी बहुवर, पुत्र लई गई, म्हारो पूत परायो होय,
हऊँ तो कन्या परणाऊँ दुई चार,
ओ तो आया साजन, कन्या लई गया, म्हारी कन्या पराई होय,
एक सास नणद सी सरवर रहेज,
जोभ का बल जीतजे ॥
एक देराणी जेठाणी सी सरवर रहेजे,
काम का बल जीतजे ॥
एक धणी सपूता सी सरवर रहेजे,
कूक का बल जीतजे ॥

अर्थ–हे बहन, आज मेरे यहाँ आनन्द और बधाइयाँ गाई जा रही हैं;
मेरे मन में आश्चर्य हो रहा है कि मैं तो दो-चार बाग लगाती हूँ,
लेकिन मालन आती है और फूल चूनकर ले जाती है,
और यूं मेरा बाग पराया हो जाता है !
मैं दस–पाँच आम लगाती हूँ,
लेकिन कोयल आती है, और केरी ले जाती है,
और यूं मेरा आम पराया हो जाता है !
मैं दो-चार पुत्रों का ब्याह रचाती हूँ,
लेकिन बहू आती है, और पुत्र को ले जाती है,
और यूं मेरा पूत पराया हो जाता है !
मैं दो-चार कन्याओं का ब्याह रचाती हूँ,
लेकिन साजन आते हैं, और कन्याओं को ले जाते हैं,
और यूं मेरी कन्या पराई हो जाती है !

लेकिन तभी उसे ख्याल आता है कि कुछ हो, अब तो उसकी कन्या पराई हो चुकी और तब मानो उसके विराट अचल के नीचे अपने और पराये से भिन्न समूची धरती घिर आती है। और तब, मानो वह अपनी बच्ची को आशीर्वाद देते हुए कहती है—

हे बेटी ! सास और ननन्द से घुल-मिलकर रहना
और उन्हें अपनी मीठी वाणी के बल से जीतना।

देवरानी और जेठानी से घुल-मिलकर रहना,
और उन्हें अपने काम के बल से जीतना।

अपने अच्छे-से पति से घुल-मिलकर रहना,
और उन्हें अपनी सन्तान के बल से जीतना।



किस कारण जीवन लहलहा रहा है ?

लग्न के बाद कन्या को विदा करने के पश्चात् इस गीत को गाते हुए स्त्रियाँ अपने खाली मन को समझाने का प्रयास करती हैं।

प्रत्येक कार्य के पीछे एक न एक कारण होता है, और किसी के भाग्य का अदृश्य हाथ छुपा रहता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए इस गीत के बोल सुनिये—

काहे का कारण सखि हो, मेहुलो सो वरस्यो,
काहे का कारण दूब लहलहे ?
धरती का कारण सखिबाई, मेहुलो सो वरस्यो,
गउआ का भाग दूब लहलहे।
काहे का कारण सखि हो, अम्बो सो मौरियो,
काहे का कारण केरी लूम रही ?
सोगीटा का कारण सखिबाई, अम्बो सो मौरियो,
कोयल का भाग कैरी लूम रही।
काहे का कारण सखि हो, बाग सो फूल्यो,
काहे का कारण कलियाँ खिल रहीं ?
माली का कारण सखिबाई, बाग सो फूल्यो,
देव का कारण कलियाँ खिल रही।
काहे का कारण सखिबाई, चुड़िलो सो पेर्‌यो,
काहे का कारण चूनर गहगहे ?
स्वामी का भाग सखिबाई, चुड़िलो सो पेर्‌यो,
इराजी का कारण चूनर गहगहे।
काहे का कारण सखि हो पुत्र जो जलमियो,
काहै का कारण दिहे अवतारिया जी ?

बहुवर का भाग सखि हो, पुत्र जी जलमियो,
साजन का भाग दिहे अवनारिया जो।

अर्थ–किस कारण से हे सखी, पानी बरसा है,
और किस कारण दूब लहलहा रही है?
धरती के कारण हे सखी, पानी बरसा है,
और गौ के भाग्य से दूब लहलहा रही है।
किस कारण से हे सखी, आम मौरा है,
और किस कारण केरी फूल रही है?
सुग्गे के कारण हे सखी, आम मौरा है,
और कोयल के भाग्य से केरी फूल रही है।
किस कारण से हे सखी, बाग फूला है,
और किस कारण से कलियाँ खिल रही हैं?
माली के कारण से हे सखी, बाग फूला है,
और देवता के भाग्य से कलियाँ खिल रही हैं।
किस कारण से हे सखी, तुम चूड़िला पहनी हो,
और किस कारण से चूनर गहगहा रही है?
स्वामी के भाग्य से हे सखी, मैं चूड़ा पहनी हूँ,
और भाई के कारण चूनर गहगहा रही है।
किस कारण से हे सखी, तुम्हारे पुत्र जन्मा है,
और किस कारण से कन्या अवतरी है?
बहू के भाग्य से हे सखी, मेरे पुत्र जन्मा है,
और साजन के भाग्य से कन्या अवतरी है।

✲

हे सुकुमार ! जरा धीरे चलो !

लग्न के पश्चात् जब वधू को लेकर बारात वापिस लौटती है, तो अनेकों बारातियों के बीच वधू अपने आपको नितान्त एकाकी पाती है। जिसने कभी अकेले घर से बाहर पाँव नहीं रखा, जो दिन में भी कहीं अकेले जाने में भय खाती हो, उस कन्या के जीवन में जब अपने स्वजन-परिजनों से ही नहीं, वरन् घर और गाँव से भी विदा ले, किसी अज्ञात स्थान की ओर प्रस्थान करने की बेला आती है, तो एक ओर जहाँ उसकी आँखों में अपने अतीत जीवन के सम्पूर्ण चित्र घूमने लगते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने भावी जीवन के प्रति कुछ जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है। अतएव लाचार सब कुछ भूल जाने के लिये नहीं, वरन् सबको नये दृष्टिकोण से समझने के लिये, वह अपना सम्पूर्ण साहस बटोरकर राह में पति से अपने नवीन गृह का परिचय पूछती है। साथ के गीत में उसी का अत्यन्त सरस वर्णन है—

बना थारो देश देख्यो नी मुलुक देख्यो,
काई थारा देश को रहेवास।
बनड़ाजी धीरा चलो, धीरा धीरा चलो जी सुकुमार,
बनड़ाजी धीरा चलो ॥
बनी म्हारो देश माळवो, मुलुक निमाड़,
गाँवड़ा को छे रहेवास।
बनी तुम घर चलो घर चलो जी सुकुमार,
बनी तुम घर चलो ॥
बना थारो देश देख्यो, नी मुलुक देख्यो,
काई थारा देश को पणिहार।
बनड़ाजी धीरा चलो, धीरा धीरा चलो जी सुकुमार,
बनड़ाजी धीरा चलो ॥
बनी म्हारा घर घर कुवा, न चौक वावड़ी,

गांव मऽ रतन तळाव।
बनी तुम घर चलो जी सुकुमार,
बनी तुम घर चलो॥
बना थारो देश देख्यो, नी मुलुक देख्यो,
काई थारा देश को जीमणार।
बनड़ाजी धीरा चलो, धीरा धीरा चलो जी सुकुमार,
बनड़ाजी धीरा चलो॥
बनी म्हारा ज्वार तूवर का खेत घणा,
घीव दूध की छे भरमार।
बनी तुम घर चलो, घर चलो जी सुकुमार,
बनी तुम घर चलो॥
बना थारो देश देख्यो नी मुलुक देख्यो,
काई थारा देश को पेरवास।
बनड़ाजी धीरा चलो, धीरा धीरा चलो जी सुकुमार,
बनड़ाजी धीरा चलो॥
बनी म्हारो घर भर रहेट्यो चलावण्यो,
काचळई लुगड़ा को छे पेरवास।
बनी तुम घर चलो, घर चलो जी सुकुमार,
बनी तुम घर चलो॥
बना थारो देश देख्यो नी मुलुक देख्यो,
काई थारा घर को रिवाज।
बनड़ाजी धीरा चलो, धीरा धीरा चलो जी सुकुमार,
बनड़ाजी धीरा चलो॥
बनी म्हारा काकी भाभी छे अति घणी,

मताजी को नरम सुभाव।
बनी तुम घर चलो, घर चलो चलो जी सुकुमार,
बनी तुम घर चलो ।।

अर्थ–"हे प्रिय, मैंने तुम्हारा देश देखा न मुल्क देखा। तुम्हारे देश का रहेवास कैसा है? जरा धीरे चलिये, हे सुकुमार! जरा धीरे-धीरे चलिये।"

इस पर पति कहता है—"हे प्रिये! मेरा देश मालवा और जिला निमाड़ है, और मैं गाँव का रहने वाला हूँ। तुम घर चलो, हे सुकुमारी! तुम घर चलो।"

पत्नी–हे प्रिय, मैंने तुम्हारा देश देखा न मुल्क देखा। तुम्हारे यहाँ का पनिहार कैसा है? जरा धीरे चलिये, हे सुकुमार! जरा धीरे चलिये।

पति–हे प्रिये, मेरे यहाँ घर घर कुएँ हैं, हर चौक में बावड़ियाँ हैं, और गाँव में एक बड़ा-सा तालाब भी है। तुम घर चलो, हे सुकुमारी! तुम घर चलो।

पत्नी–हे प्रिय, मैंने तुम्हारा देश देखा न मुल्क देखा। तुम्हारे यहाँ का भोजन किस तरह का है? जरा धीरे चलिये, हे सुकुमार! जरा धीरे-धीरे चलिये।

पति–हे प्रिये, मेरे ज्वार और तूवर के बहुत से खेत हैं, और दूध-घी की मेरे यहाँ भरमार है। तुम घर चलो, हे सुकुमारी! तुम घर चलो।

पत्नी–हे प्रिय, मैंने तुम्हारा देश देखा न मुल्क देखा। तुम्हारे यहाँ का पहिनावा किस तरह का है? जरा धीरे चलिये, हे सुकुमार! जरा धीरे-धीरे चलिये।

पति–हे प्रिये, मेरे यहाँ हर व्यक्ति चरखा चलाता है, और कंचुली तथा लुगड़े का पहिनाव है। तुम घर चलो, हे सुकुमारी! तुम घर चलो।

पत्नी–हे प्रिय, मैंने तुम्हारा देश देखा न मुल्क देखा। तुम्हारे घर का रिवाज और स्वभाव कैसा है? जरा धीरे चलिये, हे सुकुमार! जरा धीरे-धीरे चलिये।

पति–हे प्रिये, मेरे यहाँ कई काकियाँ और भाभियाँ हैं और मेरी माताजी का स्वभाव अत्यन्त ही नम्र है। तुम घर चलो, हे सुकुमारी! तुम घर चलो।



गनगौर के गीत

चैत्र वदी १० से चैत्र सुदी ३ तक के ९ दिनों में गनगौर का उत्सव निमाड़ की विशेषता है। इस अवसर पर सारा प्रदेश गीतमय हो उठता है और शिव–पार्वती, ब्रह्मा–सावित्री, विष्णु–लक्ष्मी तथा चन्द्रमा–रोहिणी की वन्दना के गीत गाये जाते हैं। इनमें सबसे अधिक गीत रनुदेवी और उनके पति (धणियेर) सूर्य के संवाद रूप में कहे गये हैं।

रनुबाई ही निमाड़ी लोक-गीतों की अधिष्ठात्री देवी है। इसके एक गीत में सौराष्ट्र देश से आने का संकेत रनुदेवी की पहिचान के लिये महत्त्वपूर्ण है। एक गीत में रनु को रानी कहा गया है। अन्यत्र रनुबाई के मन्दिर का वर्णन है जिसमें आसन पर रनुबाई विराजती है और अपने भक्तों के लिये मन्दिर का द्वार खोल देती है। एक दूसरे गीत में कहा गया है कि रनुबाई बाँझ स्त्री की कोख बहोर कर एक पुत्री देती है। हमारी सम्मति से यह रनुदेवी सूर्य की पत्नी राज्ञी का ही अपभ्रंशभाषा और लोकभाषा में घिसा हुआ रूप है। जैसे यज्ञ से जराण-जन्न जाना और उससे 'जन' बनता है; जैसा कि यज्ञोपवीत शब्द से निकले हुए जनेऊ शब्द मे पाया जाता है उसी प्रकार रण्णी–रानी-और अन्त में "रनु" रूप बना। वस्तुतः राज्ञी देवी की पूजा गुजरात–सौराष्ट्र में प्रचलित थी। उसकी १४वीं शती तक की मूर्तियाँ पाई गई हैं। एक मूर्ति के लेख में उसे श्री साम्बादित्य की देवी श्री रनादेवी कहा गया है। सौराष्ट्र में पोरबन्दर के समीप वगवदर और किन्दर खेड़ा से रन्ना देवी या रांदल देवी के मन्दिर हैं। मत्स्यपुराण, स्कन्दपुराण, विष्णु

धर्मोत्तर पुराण आदि के अनुसार राज्ञी और निक्षुभा सूर्य की स्त्रियाँ थी। वस्तुतः यह राज्ञी देवी गुप्तकाल से पहिले ईरानी शकों के साथ गुजरात-सौराष्ट्र में लाई गई। पहलवी भाषा में इसका नाम 'रश्न' था जो मिथ्र या मिहिर की सहयोगिनी थी। जैसे यज्ञ और रशन वैसे ही राज्ञ या रश्न एक दूसरे से सम्बन्धित रूप हैं। जैसा कि निमाड़ी लोक-गीत में कहा गया है गुजरात-सौराष्ट्र में भी राणादे या रांदल माँ की पूजा सन्तानप्राप्ति के लिये की जाती है। अर्वाचीन गुजराती में भी राणादे के भजन पाये जाते हैं।

जनपद १-१-५४]   —श्री वासुदेव शरण



गनगौर--नारी जीवन का सुमधुर गीति-काव्य

गनगौर के त्यौहार को यदि नारी-जीवन का सुमधुर गीति-काव्य कहें तो भी अत्युक्ति नहीं। चैत्र वदी दशमी से चैत्र सुदी तृतीया तक पूरे नौ दिनों तक चलने वाले इस त्यौहार में ऐसा एक भी कार्य नहीं जो बिना गीत के हों। स्त्रियो के द्वारा सामूहिक रूप से जब इस त्यौहार को मनाया जाता है, तो कुछ ऐसे लगता है मानो ऋतुराज बसन्त की अगवानी की जा रही हो। अमराइयों में कोयल की कूक, पलाश के फूलों की लाली और होली की उतरती खुमारी के साथ जब यह त्यौहार शुरू होता है, तो गीतों की गूँज से सारा गाँव सराबोर हो उठता है।

इसमें होली की राख में से चुने गये कंकरों मे गीतों के स्वर के साथ गौरी की प्रतिष्ठा कर छोटी-छोटी टोकनियों मे मिट्टी भर उनमें गेहूँ बोने के रूप में मानो नारी के हाथों फसल की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है और फिर उसे प्रतिदिन सींचते हुए नित्य आरती और उसकी उपासना की जाती है। अर्ध-सीचन के समय निम्न गीत गाया जाता है:—

म्हारा हरिया जवारा हो कि गहुँआ लहलहे।
मोळा अमुक भाई वर बोया जाग, कि लाड़ी वहू सीच लिया
शणी सीची न जाण्या हो कि, जवार पेळा पड़या
उनकी सरस कठोळई हो, अमुक वाई ढाक लिया।

अर्थ-मेरे हरे-जवारों के रूप में गेहूं लहलहा रहे हैं।
अमुक भाई के घर जाग बोया हैं, और उनकी बहु उन्हें सींच रहीं हैं।

वह सींचकर निवृत्त हुई कि जवारे पीले पड़ने लगे हैं।
उनके सहस्रों अंकुरों को अमुक बहन ने स्नेह से ढँक लिया है।
मेरे हरे-भरे जवारों के रूप में गेहूँ लहलहा रहे हैं।
ये जवारे जीवन की समृद्धि के प्रतीक हैं।



जहाँ हरिण जव चरते हैं

गनगौर का त्यौहार मूलतः एक खेतिहर त्यौहार भी है। इसमें देवी के रूप में अनाज को प्रतिष्ठा दी गई है। यही कारण है कि जिससे इसमें अन्नपूर्णा नारी के हाथों प्रयोग के बतौर नन्हीं नन्हीं टोकनियों में मिट्टी लेकर उसमें अनाज बोया जाता है और फिर उसे अत्यन्त ही सनेह से नित्य सींचकर बड़ी ही हिफाजत से उसकी सार-सम्भाल की जाती है। अन्त में नवें दिन उन जवारों को लेकर बड़ा उत्सव मनाया जाता है। ऐसे में यदि कोई बाहरी संकट आ जाये तो फिर उसके लिये पुरुष से सहायता चाहना स्वाभाविक है। साथ के गीत में इसी भाव को व्यक्त किया गया है—

उच्चो खेड़ो रे,
म्हारा हरिया जवारा, सरस जवारा,
वहाँ रे हरण राजा जव चरऽ
बाण साधो रे, मिरग मारो रे,
सदाशिव राव रा धणियेर जी।
राम हो ब्रह्माजी, तुम्हारो हो खेत विणासियो,
हम क्यों मारा तो ?
हमारी माय सावलड़ी, बहेण पातलड़ी,
बाई ओ अमुक बैण सासरऽ।

अर्थ—ऊँचे से गाँव में, हरे-भरे जवारों में, सरस जवारों में, एक
मृग जव चर रहा है।
हे सदाशिव, तुम बाण साधो और मृग को मारो।
हे ब्रह्माजी, देखो वह तुम्हारे खेत का नाश कर रहा है।

इस पर विष्णु की तरह शांत उसके पति कहते हैं—
हम उसे क्यों 'मारें हे प्रिये। हमारी माँ सांवली है, बहिन पतली है और अमुक बहन ससुराल में हैं।



आओ, हम सब मिलकर देवी का पूजन करें

गनगौर व्रत में जवारों की देवी के रूप में प्रतिष्ठा होने से, उन्हें स्त्रियों के द्वारा प्रतिदिन जल से सींचा जाता है और अर्ध सिंचन के उन क्षणों में निम्न गीत गाया जाता है इस गीत में देवी-पूजा के लिये स्त्रियों के सामूहिक आह्वान के साथ ही साथ पूजन करने वाली बहिन की महत्त्वाकांक्षा एवम् देवी के सन्तानदाता स्वरूप का वर्णन है। इसमें एक धन-धान्य एवम् सन्तान से सम्पन्न आदर्श गृहस्थी का अत्यन्त ही सजीव चित्रण है—

दूव का डाडळा, अकाव का फूल,
राणी ओ मोठी बहू अरघ देवाय।
अरघ दई नऽ वर पाविया,
अमुक सरीका भरतार।
आतुली पातुली, लाओ रे गङ्गाजल पाणी,
न्हावण करऽ रनुबाई राणी।
रनुबाई, रनुबाई, खोलो किवाड,
पूजण वाळई ऊभी दुवार।
पूजण वाळई काई मांग।
दूध, पूत, अह्वात माँग।
हटियाळो बाळो मॉगऽ।
जटियाळो भाई माँगऽ।
वहू को रांध्यो माँगऽ।
वेटी को परोंस्यो माँगऽ।
टोगळया वुड़न्तो गोबर माँगऽ।

पोयचा वुड़न्तो गोरस मँगऽ।
पूत की कमाई मॉगऽ।
धणी को राज मॉगऽ।
सोन्ना सी सरवर गऊर पूजां हो रनादेव।
मांय नऽ बेटी गऊर पूजां हो रनादेव।
नणंद भौजाई गऊर पूजां हो रनादेव।
देराणी जेठाणी गऊर पूजां हो रनादेव।
सास न वहू गऊर पूजा हो रनादेव।
अड़ोसेण पड़ोसेण गऊर पूजां हो रनादेव।
पड़ोसेण पर टूट्यो गरवो भान हो रनादेव।
कमी पत टूट्यो गरबो भान हो रनादेव।
दूध केरी दवणी मजघेर हो रनादेव।
पून केरो पालणो पटसाळ हो रनादेव।
स्वामी सुत सुख लड़ी सेज हो रनादेव।
असी पत टूट्यो गरबो भान हो रनादेव।

अर्थ—ओ रानी और बड़ी बहू आओ, हम दूर्वा और अकाव के फूलों से अर्घ्य देकर देवी का पूजन करें।

अर्घ्य देकर ही हमने उन जैसे श्रेष्ठ पति पाये हैं।

अरे, तरह-तरह के वृक्षों की पत्तियाँ एवम् गङ्गा का जल लाओ उन्हीं से देवी का स्नान होगा।

देवी हे रनुदेवी, अपने मन्दिर के द्वार खोलो।

देखो, पुजारिन द्वार पर खड़ी है।

पूजने वाली बहिन क्या चाहती है?

वह दूध, पूत और अपने सौभाग्यवती होने का वरदान चाहती है।

वह एक बालक चाहती है जो उससे हठ कर सके।
और एक जटिल वीर भाई चाहती है कि जिससे वह बहिन कहला सके।
वह एक बहू चाहती है कि जिसके हाथ की वह रसोई खा सके। और वह एक बेटी चाहती है कि जो उसका थाल संजो दिया करे।
वह इतना पशुधन चाहती है कि जिसके गोबर (खाद) से उसकी खेती हरी-भरी रह सके।
और इतना गोरस चाहती है कि जिससे उसके हाथ सदा घी-दूध में डूबे रहे।

वह अपने लड़के की कमाई चाहती है।
और स्वामी का राज्य चाहती है।
अन्त में पूजा के लिये सबका आह्वान करते हुए गीत की कड़ियाँ आगे बढ़ती हैं कि—

हे बहिनो आओ! हम सब मिलकर उस सुवर्ण-सदृश देवी का पूजन करें।
ओ माँ और बेटियो! आओ, हम सब मिलकर देवी का पूजन करें।
ओ ननंद और भौजाई! आओ, हम सब मिलकर देवी का पूजन करें।
ओ देवरानी और जेठानी! आओ, हम सब मिलकर देवी का पूजन करें।

ओ सास और बहू! आओ हम सब मिलकर देवी का पूजन करें!

ओ पास-पड़ोसिन ! आओ, हम सब मिलकर देवी का पूजन करें !
देखो, पड़ोसिन की पूजा पर सन्तुष्ट होकर देवी उस पर प्रसन्न हो चुकी हैं।
उसके घर दूध और दही की नदियाँ बह रही हैं,
उसके यहाँ पालने में एक बच्चा झूल रहा है।
उसकी पशु शाला में गाय-बैल समाते नहीं और
वह अपने पति और पुत्र के साथ सुख से रह रही है।
इस तरह देवी उसकी पूजा पर प्रसन्न होकर गर्वित हुई हैं।
आओ, हम सब मिलकर उस देवी का पूजन करें।



फूल और केशर की आरती

गनगौर दिनों में स्थापित इन जवारों की नित्य सुबह-शाम आरती की जाती है और उन्हें गौरी के रूप में प्रतिष्ठा दी जाती है।

उस समय गाया जाने वाला आरती का गीत देखिये—

करंड कस्तूरो भरिया, छाबा फूलड़ा जी।
तुम भेजो हो धणियेर रनुबाई, जो हम करसां आरती जी
थारी आरतड़ो ख आदर दीसां,
देव दामोदर भेटसा जी।।
करंडी कस्तूरी भरिया, छाबा भरिया फूलड़ा जी ।।

हम करंड भर कस्तूरी और छाबड़ी भर फूल लेकर देवी की आरती कर रहे हैं।
हे भाई! तुम अपनी पत्नी को इस आरती में सम्मिलित होने के लिये भेज दो,
हम रनु की आरती को सम्मान देंगे और दामोदर-स्वरूप भगवान से भेंट करेंगे।
हम करंडी भर कस्तूरी और छाबड़ी भर फूल लेकर देवी की आरती करेंगे।



प्रेम जो रेशम की गांठ की तरह अटूट होता है

यह गनगौर का एक प्रसिद्ध गीत है। इसमें प्रेम का इतना सूक्ष्म एवम् सुन्दर विवेचन है कि पढ़कर मुग्ध रह जाना पड़ता है। गनगौर के गीतों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है—

अरे सायवा खेलण गई गनागौर,
अबोलो क्यों लियो जी महाराज।।
अरे सायबा, अबोलो देवर-जेठ,
सायबजी सी ना, रह्या जी महाराज।।
अरे सायबा, पड़ी गई रेशम गांठ,
टूटऽ रे पण ना छूटऽ जी महाराज।।
अरे सायबा, खाटो दूध अरु दही,
फाट्यो रे मन ना जुड़ जी महाराज।।
अरे सायबा, खेलणऽ गई गनागौर,
अबोलो क्यों लियो जी महाराज।।

एक दिन गनगौर के उत्सव से लौटने पर जब उसका पति मौन हो उठता है, तो रनु पूछती है—"हे प्रिय! मैं गनगौर खेलने गई थी,
इस पर आज आपने यह मौन क्यों ले लिया है?"
"हे प्रिय! देवर और ज्येष्ठ का मौन चला सकत है,
लेकिन आपसे हम मौन नहीं रह सकते।
हे प्रिय! हमारा प्रेम तो रेशम की गाँठ की तरह बँध चुका है,
जो टूट भले ही जाये, लेकिन छूट नहीं सकती।

हे प्रिय ! फटे हुए दूध और दही की तरह, मन भी फट जाने के बाद फिर कभी मिल नही पाता।

"हे प्रिय ! मैं सिर्फ गनगौर खेलने गई थी, इस पर आज आपने ये मौन क्यो ले लिया है ?"



हे देवी! तुम्हारे किन किन स्वरूपों का वर्णन किया जाये!

गनगौर के गीत स्वरूप-वर्णन एवम् स्वभाव-चित्रण के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। देखिये, साथ के एक गीत में रनु का नखशिख वर्णन कितना सुन्दर बन पड़ा है—

थारो काई काई रूप बखाणूँ रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारी अगळई मूंग की सेगळई रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारो सिर सूरज को तेज रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारी नाक सुआ की रेख रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारा डोळा निवू की फाक रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारा दात दाड़िम का दाणा रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारा ओठ हिंगुळ की रेख रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारा हाथ चम्पा का छोड़ रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।
थारा पांय केळ का खंब रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।

थारो काई काई रूप बखाणूं रनुबाई,
सौरठ देस सी आई ओ ।।

हे देवी ! तुम्हारे किन–किन स्वरूपों का वर्णन किया जाय ?
तुम सौराष्ट्र देश से जो आई हो !
तुम्हारी अंगुलियाँ मूंग की फली जैसी पतली, नरम और कोमल हैं,
और तुम्हारा चेहरा सूर्य की तरह दैदीप्यमान है !
तुम्हारी नासिका सुग्गे की चोंच की भाँति अत्यन्त नुकीली है,
और तुम्हारी आँखें नीबू की फाँक के समान गोल, बड़ी और चमकीली हैं !
तुम्हारे दाँत अनार के दानों की भाँति सुन्दर हैं,
और तुम्हारे ओंठ हिंगुल सदृश लालिमा लिये हुए हैं !
तुम्हारे हाथ चम्पे की टहनियों की तरह पतले और सुकुमार हैं,
और तुम्हारे पाँव केले के खम्बे के समान गोल, चिकने और सीधे हैं !
हे देवी ! तुम्हारे किन-किन स्वरूपों का वर्णन किया जाये ?
तुम सौराष्ट्र देश से जो आई हो !



कन्या को पिता का उपदेश

कन्या के प्रति माँ का उपदेश तो प्रसिद्ध रहा है, लेकिन इ
गीत मे अपनी बेटी के लिये पिता का उपदेश सुनिये। माँ व
उपदेश जहाँ ममता से भीगा होता है, वहाँ पिता का उपदेश भ
प्यार एवम् गाम्भीर्य से खाली नही होता।

गीत के बोल हैं—

पिताजी की गोदी बठी रनुबाई विनव।
कहो तो पिताजी हम रमवा हो जावां।
जावो बेटी रनुबाई रमवा जावो,
लम्बो बजार देखि दौड़ी मत चलजो।
उच्चो वटलो देखि जाई मत बठजो,
परायो पुरुष देखी हसी मत बोलजो।
नीर देखी न बेटी चीर मत धोवजो,
पाठो देखि न बेटी आडी मत घसजो।
परायो बाळो देखी हाय मत करजो,
सम्पत देखी न बेटी चढ़ी मत चलजो।
विपद देखी न बेटी रड़ी गत बठजो,
जावो बेटी रनुबाई, रगवा जावो।

अर्थ–एक दिन रनु प्यार से अपने पिता की गोदी में बैठ क
उनसे से पूछती है कि— हे पिताजी! यदि आप कहें तो हम
खेलने के लिये जावें।

इस पर उस के पिताजी कहते हैं 'हे बेटी' जाओ, तुम
खेलने के लिये अवश्य जाओ, लेकिन सृष्टि रूपी लम्बा बाजार

देखकर दौड़ कर नहीं चलना, क्योंकि उसमें उलझ कर गिरने या गुमराह होने का भय रहता है।

अपनी राह में मिलने वाले प्रलोभन-रूपी ओटले (चबूतरे) पर कहीं बैठ न जाना, क्योंकि उससे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा आती है।

पराये पुरुष से कभी हँस कर बात न करना, क्योंकि मस्तिष्क से काम लेने वाला पुरुष-वर्ग स्त्री के हृदयगत भावों को समझने में सदा भूल करता रहा है और इसी लिये अर्थ का अनर्थ करने में वह कभी नहीं चूकता।

कहीं पानी देख कर ही वस्त्र धोने न लग जाना, क्योंकि इससे साध्य के लिये ही साधन का उपयोग करने की दृढ़ता का लोप हो जाता है। कारण, वस्त्र धोने के लिये पानी है, पानी के लिये वस्त्र धोना नहीं।

कहीं पत्थर देख कर ही एड़ी घिसने न लग जाना, क्योंकि इससे पुरुष की लोलुप दृष्टि तुम्हारे चरणों में उलझकर दोनों को राह चलने में बाधक सिद्ध होगी।

किसी के गोदी के लाल को देख कर कभी निश्वास न डालना, क्योंकि कुछ न पाना ही सब कुछ पाने का वरदान है।
सम्पत्ति पाने पर गर्वित न होना, क्योंकि वह कभी किसी की नहीं हुई है।

और विपत्ति आने पर कभी निराश न होना, क्योंकि विपत्ति में ही मनुष्य का वास्तविक रूप निखरता है।

जाओ बेटी ! खेलने के लिये जरूर जाओ, लेकिन साथ में अपने पिता का यह उपदेश भी लेती जाओ। यह तुम्हें सुख में अपने-आप को न भूलने और दुःख में स्वयम् को पहिचानने मे सहायक होगा।



बादलों की चूनर में बिजली की मगजी

लोक-गीतों में अत्यन्त ही मनोरम कल्पनाएँ सँजोई हुई हैं। देखिये साथ के एक गीत में एक युवती के द्वारा शुक्र के तारे की बिन्दी, बादल की चूनर, बिजली की किनार, लक्ष लक्ष ताराओं की अँगिया और वासुकी नाग की चोटी के रूप मे विराट श्रृंगार की कैसी अद्‌भुत कल्पना की गई है—

शुक्र को तारो रे ईश्वर उंगी रह्यो।
तेकी मखऽ टीकी घड़ाव॥
ध्रुव की बादळई रे ईश्वर तुली रही।
तेकी मखऽ तह्‌बोळ रगाव॥
सरग की बिजळई रे ईश्वर कड़की रही।
तेकी मखऽ मगजी लगाव॥
नव लख तारा रे ईश्वर चमकी रह्या।
तेकी मखऽ अंगिया सिलाव॥
चाँद-सूरज रे ईश्वर उगी रह्या।
तेकी मखऽ टीकी लगाव॥
वासुकी नाग रे ईश्वर देखई रह्यो।
तेकी मखऽ एणी गुथाव॥
बड़ो हठ वाळई रे, गोरल-गे'रड़ी॥

अर्थ—एक दिन रनु अपने पति से हठ पकड़ जाती है और कहती है कि– 'हे पतिदेव! वह जो आकाश में सबसे तेजस्वी शुक्र का तारा चमक रहा है न? उसकी मुझे बिन्दी गढ़वा दो। और यह जो ध्रुव की ओर (उतर में) बरसने योग्य बदली छाई हुई है, उसकी मुझे चूनर रंगवा दो।

और सुनो, स्वर्ग में कड़कने वाली बिजली की उसमें मगजी लगवा देना।

साथ ही, आकाश में चमकने वाले लाखों ताराओं की मुझे कंचुली सिलवा देना, कि जिसके अग्र-भाग में चन्द्र और सूर्य जड़े हुए हों।

इस तरह, बादल और बिजली से लगाकर, ग्रह-नक्षत्र और चन्द्र-सूर्य से युक्त अपनी चूनर और कंचुली बनवाने का आग्रह करने के पश्चात्, वह एक और चीज मांगती है और वह है अपने केशों में गूँथने के लिये चोटी। लम्बे, चिकने, काले केश, स्त्री के सौन्दर्य के साथ ही साथ सौभाग्य के लक्षण भी होते हैं।

इसी लिये वह कहती है—

'हे पतिदेव! देखो, वह जो इठलाता और बल खाता हुआ काले वर्ण का वासुकी नाग दिख रहा है न, उसकी मुझे वेणी गुँथवा दो।'

और इस पर, मुस्कुराते हुए उसके पति कहते हैं कि—
"हे गौरवर्ण रनु! तू बड़ी हठवाली है।"



सपने का अर्थ बताइये, हे मेरे भोले पतिदेव !

आजकल स्वप्न लिखने की रीत है, लेकिन लोक-गीतों की दुनियाँ में आज से जाने कितने बरस पूर्व एक ऐसे सपने की कल्पना की गई है जिसमें सुन्दर प्रतीकों के सहारे हमारे पारिवारिक जीवन का अत्यन्त ही सजीव वर्णन कराया गया है। स्वभाव-चित्रण की दृष्टि से भी यह गीत अद्वितीय है।

बात यह होती है कि एक दिन रत्नु अपने सपने में चौदह वस्तुएँ देखती है और सुबह उठने पर अपने पति से उसका अर्थ पूछती है।

वह पूछती है कि—

प्रश्न:—सूति न हो धणियेर, सपनो हो देख्यो,
सपना को अरथ बताओ भोळा धणियेर ॥
मानसरोवर मनऽ सपना मंऽ देख्यो,
भर्‌यो तुर्‌यो भंडार मनऽ सपना मंऽ देख्यो।
वहेती सी गंगा मनऽ सपना मंऽ देखी,
भरी तुरी वावड़ी मनऽ सपना मंऽ देखी।
श्रावण तीज मन सपना मंऽ देखी,
कड़कती विजळई मनऽ सपना मंऽ देखी।
गोकुल कान्हो मनैऽ सपना मंऽ देख्यो,
तरवरतो बिच्छू मन सपना मऽ देख्यो।
गुलाब को फूल मनऽ सपना मंऽ देख्यो,
झपजक दीपलो मनऽ सपना मंऽ देख्यो
कवळारी केळ मनऽ सपना मंऽ देखी,
वाड़ उपर की वांझुली मनऽ सपना मंऽ देखी।

पेळा वाळई नार मनऽ सपना मंऽ देखी,
ऊगतो सो सूरज मनऽ सपना मंऽ देख्यो।
सपना को अर्थ बताओ भोळा धणियेर ॥

हे प्रिय ! रात को सोते ही मैंने एक स्वप्न देखा। इस सपने का अर्थ मुझे बताइयेगा।

मानसरोवर मैंने सपने में देखा,
भरा-पूरा भण्डार मैंने सपने में देखा।
बहती हुई गङ्गा मैंने सपने में देखी,
भरी-पूरी बावड़ी मैंने सपने में देखी।
श्रावण की हरियाली तीज मैंने सपने में देखी,
कड़कती हुई बिजली मैंने सपने में देखी।
गोकुल का कन्हैया मैंने सपने में देखा,
तरवरता हुआ बिच्छू मैंने सपने में देखा।
गुलाब का फूल मैंने सपने में देखा,
झपकता हुआ दीया मैंने सपने में देखा,
केले का वृक्ष मैंने सपने में देखा,
बांझ स्त्री का खेत मैंने सपने में देखा।
पीला वस्त्र ओढ़े हुए स्त्री मैंने सपने में देखी,
उगता हुआ सूर्य मैंने सपने में देखा।
हे मेरे भोले पतिदेव ! मुझे सपने का अर्थ बताइये।

इस पर उसका पति कहता है कि—

उत्तर—मानसरोवर थारो बाप हो रनादेव,
भर्‌यो-तुर्‌यो भण्डार थारो ससरो हो रनादेव।
बहती सी गङ्गा थारी माय हो रनादेव,
भरी-पुरी बावडी थारी सासू हो रनादेव।

सरावण तीज थारी बइण हो रनादेव,
कड़कती बिजळई थारी नणंद हो रनादेव।
गोकुल को कान्ह थारो भाई हो रनादेव,
तरवरतो बिच्छू थारो देवर हो रनादेव।
गुलाब को फूल थारो बाळो हो रनादेव,
झपलक दीपलो थारो जँवई हो रनादेव।
कवळा की केळ थारी कन्या हो रनादेव,
वाड़ उप्पर की वांजुली थारी दासी हो रनादेव।
पेळा वाळई नार थारी सौत हो रनादेव।
उगतो सो सूरज थारो स्वामी हो रनादेव।
सपना को अरथ बतायो भोळा धणियेर ।।

अर्थ—मानसरोवर तुम्हारे पिता हैं, हे रनादेवी !
भरा-पूरा भण्डार तुम्हारे ससुर हैं, हे रनादेवी !
बहती हुई गंगा तुम्हारी मां हैं, हे रनादेवी !
भरी-पूरी बावड़ी तुम्हारी सास हैं, हे रनादेवी !
श्रावण की हरियाली तीज तुम्हारी बहन हैं, हे रनादेवी !
कड़कती बिजली तुम्हारी ननंद है, हे रनादेवी !
गोकुल का कन्हैया तुम्हारा भाई है, हे रनादेवी !
तरवरता हुआ बिच्छू तुम्हारा देवर है, हे रनादेवी !
गुलाब का फूल तुम्हारा बच्चा है, हे रनादेवी !
झपकता हुआ दीया तुम्हारा जँवाई है, हे रनादेवी !
आँगन की केल तुम्हारी कन्या है, हे रनादेवी !
बाड़ की बाँझ ईख तुम्हारी दासी है, हे रनादेवी !
पीला वस्त्र ओढ़े हुए स्त्री तुम्हारी सौत है, हे रनादेवी !

उगता हुआ सूर्य तुम्हारा पति है हे रनादेवी !
इस पर रनु कहती है कि हे मेरे भोले पतिदेव, तुमने सपने का सच्चा अर्थ बतला दिया !!



आंखों ही आंखों में जवाब

कहते हैं नयन वाणी से भी अधिक बोलते हैं। इस गीत में उन्हीं की भाषा सुनिये।

गीत के बोल हैं—

वाकी वळेण नद्दी बहे म्हारी सई हो,
सेळा जामुण की रे छाया ॥
ह्वाँ रे बालुड़ो पाती तोड़ऽ,
रनुबाई डुबी-डुबी न्हावऽ।
न्हावतज् न्हावतज् धणियेरजी न देख्यो,
कसी पत दीसो हो जवाब॥
हाथ जोड़ी न सीस नवां म्हारी सई हो,
नैणां सी दीसां जवाव ॥

अर्थ—टेढ़ी तिरछी नदी के किनारे शीतल जामुन की छाया थी। वहीं पर बच्चा पत्ती तोड़ रहा था और रनु डुबकियाँ लगा-लगाकर नहा रही थी।

इसी बीच उसकी एक सहेली ने पूछा—"यदि ऐसी अवस्था में नहाते हुए तुम्हें तुम्हारे पति ने देख लिया तो क्या जवाब दोगी?" वह बोली—"हे बहिन! हाथ जोड़ कर शीश झुका लूँगी और इस तरह उन्हें आँखों ही आँखों में जवाब मिल जायेगा।"



अंधेरी कोठरी और बैरन रात

जब गाँव की समस्त स्त्रियाँ गनगौर-उत्सव में सम्मिलित होने के लिये जाती हैं, तब एक स्त्री का पति उसे घर में अकेला छोड़कर स्वयम् कहीं बाहर चला जाता है। ऐसी अवस्था में उस स्त्री की मानसिक व्यथा का वर्णन सुनिये—

एक अंधारी कोठड़ी,
दूसरी बयरण रात।
तिरिया को लोभी म्हारो सायबो,
प्रभुजी, लई गयो टाळो ॥
टाळो टाळो रे प्रभुजी,
काई करो,
यौवन मतवाळो ॥

अर्थ–एक तो अन्धेरी कोठरी है और दूसरे यह काली अन्धेरी रात भी मेरी बैरिन हुई जा रही है।
मेरे प्रियतम स्त्री के लोभी हैं, और वे मुझे टाला देकर कहीं बाहर चले गये हैं।

लेकिन टाला देकर चले गये हैं, ऐसी बात नहीं है। वे तो यौवन में मतवाले हुए जा रहे हैं॥



जिसकी कोठरी से अगर की गन्ध आती है

रनु और उसके पति को लेकर सहेलियों के बीच चलनेवाले एक विनोद-गीत की भी झाँकी देखिये—

रोहेण बाई थारी कोठरी हो माता,
अगर रह्यो महेकाय ।
कि हो गन्धीड़ो बसी गयो,
की हो फूली फुलवाड़ी ।
नही हो गन्धीड़ो बस म्हारी सई हो,
नहीं तो फूली फुलवाड़ी,
आया चन्द्रमा राजा, बठ्या म्हारी कोठरी,
अगर रह्यो महेकाय ।

अर्थ—एक दिन रनु से उसकी सहेलियाँ पूछती हैं कि हे बहिन !
आज तुम्हारी कोठरी से अगर की गन्ध आ रही है ।
क्या इसमें गन्धी बस गया था, या फुलवारी फूली है ?
इस पर रनु मुस्कुराते हुए कहती है कि—
हे बहिन ! न तो इसमें गन्धी बस गया था,
और न फुलवारी ही फूली है ।
आज चन्द्रमा राजा आकर यहाँ बैठे थे ।
इसी से अगर की गन्ध आ रही है !



जो अमृत की तरह मीठी वाणी बोलती है

इस गीत में आम्र-वृक्ष की घनी छाया में रनु के स्नान करने और चूनर सुखाने का अत्यंत ही सुन्दर वर्णन है—

गीत के बोल हैं—

झाळ झपकऽ, बिन्दी चमकऽ, बोलऽ अमृत वाणी,
धणियेर अंगणऽ कुआ खणाया, हरिया एतरो पाणी,
जूड़ो छोड़ी न्हावण बठ्या, धणियेर घर की राणी,
धणियेर घर की राणी रनुवाई, बोलऽ अमृत वाणी।
आमुलड़ा री डाळ म्हारी माता, सालुड़ो सुखाड़ऽ,
सालुड़ा रा रम्मक झम्मक, नाचऽ ठम्मक ठम्मक,
धणियेर घर की राणी रनुवाई, बोलऽ अमृत वाणी।

अर्थ—उनका स्वरूप दमक रहा है, बिन्दी चमक रही है
और वे अमृत की तरह मीठी वाणी बोल रही हैं।
धणियेर के आँगन में कुआँ खुदा है,
जिसमें घुटने इतना पानी है,
वहाँ पर रानी रनु जूड़ा खोलकर नहाने बैठी है,
वे धणियेर की रानी हैं रनु बाई;
जो कि अमृत की तरह मीठी वाणी बोल रही हैं।
वे आम-वृक्ष की डाली से बाँधकर अपनी साड़ी सुखा रही हैं
और साड़ी के हिलोरों के साथ ठुमके दे-देकर नाच रही हैं,
वे धणियेर की रानी हैं रनु बाई,
जो अमृत की तरह मीठी वाणी बोल रही हैं!

❋

पनिहारिन

गनगौर के गीतों में नारी-जीवन के सुन्दर शब्द-चित्र संजोये हुए हैं। देखिये इस गीत में पानी भरने जाने वाली पनिहारिन की मनोभावनाओं का कैसा सजीव चित्रण है—

गीत के बोल हैं—

चन्दन से भरी हो तळाई, राणी रनुवाई पाणी खऽ संचरिया।
आगऽ जाऊँ तो डर भय लागऽ,
पाछऽ रहूं तो घागर नहीं डूबऽ
सिर लेऊँ तो बाजूबंद भींजऽ कड़ऽ लेऊं तो बाळो रड़ऽ

अर्थ—चन्दन से भरी तलैया के किनारे,
रनु पानी के लिये जा रही है।
लेकिन वह सोचती है—
यदि मैं आगे जाऊँ तो डर भय लगता है,
और पीछे रहूँ तो गागर नहीं डूबती।
यदि मैं पानी से भरी गागर को सिर पर लूँ, तो मेरे बाजूबन्द भींजते हैं,
और यदि कमर पर लूँ, तो मेरा बच्चा रोता है।
चन्दन से भरी तलैया के किनारे,
रनु पानी भरने के लिये जा रही है।



तारे का उदय कब होगा ?

लोक-गीत प्रकृति-वर्णन से भी खाली नहीं हैं।

देखिये, इस गीत में भोर के प्रतीक लाल तारे के साथ जाग उठनेवाली पड़ोसिन, एवम् दही बिलोने की आवाज के साथ गूँज उठनेवाले चक्की के स्वर के साथ, सुहावने प्रभात के होने का कितना सुन्दर वर्णन किया गया है—

गीत के बोल हैं—

चन्दमा निरमळई रात,
तारो कँवऽ उँगसे ?
तारो उँगसे पाछली रात,
पड़ोसेरण जागसे जी ॥
धमकसे मही केरी माट,
धमकसे घट्टीलो जी,
ईराजी घर आवसे,
रनुबाई खऽ आरती जी ॥

अर्थ—निर्मल चाँदनी रात खिली हुई है। भोर के प्रतीक शुक्र के तारे का उदय कब होगा ?

तारे का उदय तो पिछली रात में होगा जबकि पड़ोसिन जाग उठेगी।

तब दही के बिलोने की आवाज आयेगी और चक्की का सुमधुर स्वर गूँज उठेगा।

तभी भाई घर आयेंगे। हे देवी ! तुम्हारा स्वागत है ॥



मैके का आग्रह

ससुराल के सम्पूर्ण सुखों के बावजूद भी नारी को मैके के प्रति विशेष आकर्षण रहा है।

साथ के गीत में, मैके जाने के प्रश्न को लेकर, पति-पत्नी के बीच चलनेवाले मधुर विनोद का रसास्वादन कीजिये—

गीत के बोल हैं—

अगर चन्दन का बण्या रे किवाड़,
बावन चन्दन की कोठड़ी,
कोठड़ी मंऽ बठ्या राणी रनुबाई नार हो,
बाळा कुवर की मावली।
भोळा हो धणियेर, भोळा तुम्हारो राज,
तो नव दिन पियर हम जावां जी।
तुम देवी मूरख गवार,
नव दिन पीयर मत जाओ।
तपऽ तपऽ चैत केरो घाम,
कड़ी को बाळो कुम्हलई जासे।
तुम्हारा बाळा खऽ राखो तुम्हारा पास,
नव दिन पियर हम जावां जी॥

अर्थ-अगर चन्दन के किवाड़ोंवाली
बावन चन्दन की एक कोठरी है,
उस कोठरी में बच्चे की माँ रनु बैठी हुई है।
इतने में उसके पति आये, तो उसने कहा—
हे प्रिय, तुम बहुत अच्छे हो और अच्छा तुम्हारा राज है।

लेकिन हमें नौ दिन अपने मैके हो आने दो।
वे बोले—हे प्रिये ! तुम मूर्ख और गंवार हो,
देखो, चैत की धूप तप रही है,
तुम्हारी गोदी का बालक कुम्हला जायेगा,
अतएव तुम नौ दिन मैके मत जाओ।
इस पर रनु बोली—
हे प्रिय ! तुम अपने बच्चे को अपने पास रखो।
हम तो अपने मैके अवश्य जायेंगे॥
पति के स्वार्थ-रत उत्तर का यही जवाब हो सकता था।



जिनका एड़ी तक लम्बा लहँगा और कमर झूलते केश हैं

देखिये इस गीत में लम्बे केश और गोदी में बालक लिये सौभाग्यवती स्त्री का कैसा भव्य, दिव्य, स्नेहिल चित्र है।

गीत के बोल हैं—

रनुबाई का अंगणा मंऽ ताड़ को झाड़
माता ताड़ को झाड़, वहां रहे देवी को रहेवास।
माता आड़ी रुळतो घागरो, न कड़ी रुळता केश,
माता गोदी लियो बालुड़ो, न पेळो पेरी जाय।

अर्थ—रनु के आँगन में ताड़ का वृक्ष है।
जहाँ ताड़ का वृक्ष है, वहीं देवी का निवास-स्थान है।
उनका एड़ी तक झूलता लहँगा और कमर तक झूलते केश हैं
उनकी गोदी मे बालक है, और वे पीला वस्त्र पहने हुए हैं।



समुद्र की लहर सुहावनी लग रही है।

गनगौर के गीतों में नई-नई कल्पनाओं के माध्यम से एक ही देवी का दर्शन कराया गया है, और समुद्र-पर्यंत उसकी महत्ता सिद्ध की गई हैं। देखिये एक गीत है—

माता समुन्दर की झबर सुहाणी लागऽ हो।
माता झबर झबर रथ हिलोळा लेय,
रत्नाकर अम्बो मौरियो।।
माता रथ मंऽ सी राणी रनुबाई काई बोलऽ
माता कुणऽ म्हारो आणो लई जाय
माता दूर का अमुक भाई मानवी हो
माता ऊ तुम्हारो आणो लई जाये
माता समुन्दर की झबर सुहाणी लागऽ हो।।

अर्थ—हे माँ! समुद्र की लहर सुहावनी लग रही है
और उसकी लहरों में एक रथ हिलोरें ले रहा है
रत्नाकर आम्र-वृक्ष में मौर आ गये हैं।
रथ में से रनुदेवी कह रही है कि कौन भाई मुझे अपने यहाँ ले जायेगा
हे माँ! दूर के अमुक भाई मानवीय हैं
वे तुम्हे अपने यहाँ ले जावेंगे।
समुद्र की लहर सुहावनी लग रही है।।



मक्खन की पाल से बँधा दूध का तालाब

अभी तक साहित्य में दूध-दही की नदियों की चर्चा सुनी थी लेकिन इस लोकगीत में मक्खन की पाल से बँधे दूध के तालाब की मनोरम कल्पना संजोई गई है। साथ ही शहजादियों के इत्र में नहाने की तरह इसमें सूर्य को दूधों नहाता दर्शाया गया है।

नहाते नहाते जब इस बात की चर्चा चलती है कि आज किसके यहाँ मेहमान होकर चला जाये, तो इसमें पुरुष के सुख-सुविधाओं की ओर आकर्षित होने, और नारी के निःसंतान स्त्रियों के प्रति दयार्द्र होने का स्वभाव-दर्शन भी कराया है। और यूं गनगौर की, संतान-दाता व्रत के रूप मे महत्ता सिद्ध की गई है।

दूधन् भरी तलावडी, लोणी बाधी पाळ
वहां मोळा धणियेर न्हावण करऽ
रनुबाई हुआ पणिहार
न्हावत्‌ज धोवत्‌ऽ मथो मथ्यो, कुणऽ घर जासा भेजवान,
कुणऽ घर अम्बा आमली, कुणऽ घर दाड़िम अनार,
ऊ घर सूखा केवड़ा हो, रनुबाई मेहका लेय।
दूर का अमुक भाई अरज करऽ, उन्ऽ घर हुसाॅ भेजवान॥

अर्थ—एक मक्खन की पाल से बँधे दूध के तालाब मे रनु के पति स्नान कर रहे थे।

इतने में रनु भी वहाँ से पानी भरने के लिये निकली स्नान करते करते पति ने सोच विचार किया कि अब हम किसके यहाँ मेहमान होंगे।

किनके यहाँ आम और इमली के वृक्ष हैं और किनके यहाँ अनार है।

इस पर रनु कहती है कि उस भाई के यहाँ सूखा केवड़ा है लेकिन उसने हमें याद किया है अतएव हम उसी के यहाँ मेहमान होंगे।



हमें घर जाने की आज्ञा दो, हे रानी रनु !

ग्रामीण नारी का जीवन यों बाह्यतः चाहे जितना मुक्त प्रतीत होता हो, लेकिन वह अपने आप से इतनी जकड़ी हुई है कि कहीं एक क्षण भी निश्चिन्तता से बैठने के बाद, दूसरे ही क्षण उसे घर की चिन्ता सताये बिना नहीं रहती। ऐसी ही एक ग्रामीण गृहिणी के जीवन का एक चित्र देखिये।

गनगौर गीत की रनु सदैव सम्पन्न घर की हो, ऐसी बात नहीं। देखिये, इस गीत में रनु के रूप में एक साधारण नारी का कैसा सजीव चित्रण किया है—

तुम देवो रजा घर जावां,
राणी रनु बाई हो ॥
चूल्हा पर खीचड़ी खद-बदऽ,
राणी रनु बाई हो ॥
अंगारऽ सीजऽ दाळ,
राणी रनु बाई हो ॥
ससराजी सूता द्वार,
राणी रनु बाई हो ॥
सासूजी दीसे गाळ,
राणी रनु बाई हो ॥
म्हारा स्वामी सोया सुख सेज,
राणी रनु बाई हो ॥
तुम देवो रजा घर जावां,
राणी रनु बाई हो ॥

अर्थ–हमें घर जाने की आज्ञा दो, हे रानी रनु !

मेरे यहाँ चूल्हे पर खिचड़ी खदबदा रही है, हे रानी रनु !
और अंगारों पर दाल सीज रही है, हे रानी रनु !
मेरे श्वसुरजी द्वार पर सोये हैं, हे रानी रनु !
और मेरी सास नाराज होगी, हे रानी रनु !
मेरे स्वामी सुन्दर सुन्दर शैया पर सो रहे हैं, हे रानी रनु !
अतएव हमें घर जाने की आज्ञा दो, हे रानी रनु !!



नारी-जीवन का एक करुण चित्र

कहने को तो गनगौर के गीतों में देवी-देवताओं का वर्णन है, लेकिन वास्तव में मानवीय तत्त्वों से भरपूर हैं। लगता है कि इनमें रनु के माध्यम से नारी की चिरंतन व्यथा पिरोई हुई है।

देखिए, एक स्त्री को अपने खेत गए पति के लिये रोटियाँ ले जाने में जब कुछ देर हो जाती है और महज इतनी-सी बात पर उसका पति उसे पीट देता है, तब अपने घर, परिवार और मैके से दूर, पति को ही सर्वस्व समझनेवाली स्त्री की अवस्था कितनी निरीह हो उठती है, इसका निम्नलिखित गीत में कितना करुण चित्रण है। गीत क्या है, उसके शब्द-शब्द से व्यथा चू रही है—

उच्चो सो पीप्पल कोपळयो हो देवी,
वहा वठी गाय गोठाण।
चादर पिछोड़ी को गाळणो हो देवी,
रनुबाई भात लई जाय।
अवतज जो धणिएरजी न देखिया,
हो राजा,

मोड़ी लीनी कणिएर सोठी,
एक जो मारी, न दूसरी, न हो राजा
तीसरी मऽ जोड़्या दुई हाथ।
जो तुम धणियेर सोठी मारसो हो राजा
नहीं म्हारो माय न बाप,
नहीं हमारी माय न मावसी हो राजा,
कुण म्हारो आणो लई जाय।

कलयुग मग्रमुक भाई मानवी राजा
ऊ तुम्हारो आणो लई जाय।
ग्रमुक भाई दीसे तुमख वाजुट हो राजा
लाड़ीबाई लागसे तुम्हारा पांय।

ग्रर्थ—ऊँचे से पीपल के वृक्ष में कोंपलें फूट आई हैं।
उसके नीचे गायों का समूह बैठा है।
एक लम्बे अंगोछे मे बाँधकर, रनु भात ले जा रही है।
उसे आते हुए जैसे ही पति ने देखा
तो एक कनेर की गीली बेंत तोड़ ली।
और एक मारी, दूसरी मारी, कि तीसरी में अपने दोनों हाथ
जोड़ लिए।

बोली—"हे स्वामी, जो तुम मुझे सोटियों से भी मारोगे, तो
भी देखो, न तो मेरे माँ है, न पिताजी,
हमारी माँ के समान मौसी भी नहीं है।
फिर कौन हमें अपने मैके लिवा ले जाएगा?"

इस पर गीत की कड़ियाँ ही मानो उसे सांत्वना देते हुए आगे बढ़ती हैं—

"हे देवी, इस तरह के कष्टों में से ही तुम्हारा जीवन निखरता आया है। देखो, कलियुग में अमुक भाई मनुष्य है, वे तुम्हे अपने यहाँ ले जाएँगे। वे तुम्हें बैठने के लिए सम्मान-राहित उच्चासन देंगे, और उनकी स्त्री तुम्हारे पाँव पखारेगी।



जिसके रोष से उसके वस्त्र कुम्हला उठे हैं !

गनगौर के गीतों में रनु और धणियेर के माध्यम से हमारे गार्हस्थ्य जीवन के अनेकों चित्र संजोये हुए हैं। ये आनन्द और उल्लास ही नहीं, पुरुष की निर्ममता एवम् नारी हृदय के दुःख और दर्द से भी गीले हैं।

देखिये, एक बहिन को जब पंखा झलते झलते झपकी लग जाती है तो उसके इस तनिक-से अपराध पर उसका पति उसे कितनी निर्ममता से पीट देता है। इसी का इस गीत में वर्णन है। साथ ही, इसमें नारी के आत्म-सम्मान का भी दर्शन कराया गया है—

डावां हाथ तेल-फुलेल, जवणा हाथ आरती जी।
धणियेर राजा सोया सुख-सेज, रनुबाई डोल रींझणोजी
डोलतज डोलतज आई गई झपकी, हाथ को रींझणो भुई गिर्‌यो जी।
धणियेर राजा की खुली गई नींद, तड़ातड़ मार्‌यो ताजणा जी।
रनुबाई खऽ लागी बड़ी रीस, आसन छोड़ी भुई सूता जी।
खुटी मंऽ को चीर कोम्हलाय, असा कसा रोष भर्‌या जी।
बेड़ुला को नीर झोकळाय, असा कसा रोष भर्‌या जी।
पालणारो बाळो बिलखाय, असा कसा रोष भर्‌या जी।

अर्थ-उसके बायें हाथ की ओर तेल और फुलेल, तथा दाहिने हाथ की ओर आरती थी।

उसके पति अपनी शैया पर सुख की नींद सोये थे, और रनु उन पर पंखा झल रही थी।

पंखा झलते-झलते उसे झपकी लग गई, और हाथ का पंखा जमीन पर गिर गया।

इससे उसके पति की नींद खुल गई, और उन्होंने तड़ातड़ उसे कुछ सेलियाँ मार दी।

रनु को बहुत गुस्सा आया, और वह अपना आसन छोड़कर जमीन पर सो गई।

तब उसका पति उसे समझाने लगता है कि—

हे प्रिये! देखो, तुम्हारे खूँटियों में टंगे वस्त्र तक कुम्हला उठे हैं। तुम्हें ऐसा रोष कैसे आ गया।

तुम्हारे बर्तनों में भरा पानी तक झकझोर उठा है, तुम्हें ऐसा रोष कैसे आ गया।

इस पर भी जब रनु का गुस्सा शान्त नहीं होता तो वह कहता है—

देखो, तुम्हारा पालने का बच्चा रो रहा है। तुम्हें ऐसा रोष कैसे आ गया!

और यूं, पत्नीत्व पर मातृत्व की विजय होती है!!!



पड़ोसी-स्वभाव

गनगौर-गीतों में हमारे गृहस्थ-जीवन की छोटी-से छोटी घटनाएँ भी अंकित रही हैं। इनमें मानव-स्वभाव का बड़ा ही सूक्ष्म निरूपण है।

देखिये, एक गरीब बहिन के यहाँ जब उसका भाई आता है और वह उसे सास-ससुर की अनुपस्थिति में दो मुट्ठी खिचड़ी बनाकर खिला देती है, तो इतनी-सी बात को उसकी पड़ोसिन उसके सास-ससुर से कहे बिना नहीं रहती। इसमें, अपने ही घर में, सास-ससुर की मरजी के बिना, अपने भाई को दो मुट्ठी चावल तक न खिला सकने जैसी स्त्री की लाचारी, और पड़ोसी-स्वभाव की चुगलखोरिता का दर्शन कीजिये। गीत के बोल हैं—

माता, पस भरी चोखा, मुट्ठी भर मूँग की दाळ
रोहेण देवी रांधऽ खीचड़ी,
माता, राधी सीधी न जिमाड्यो छे बीरो,
तो जवं लक आई पड़ोसेण।
ओ पड़ोसेण तू छे म्हारी धरम की माय, सासु ससरा
ख जाई मत कहेजे,
पड़ोसेण देवां, देवा नवसर्‍यो हार,
हाथ को छल्लो मूँदड़ो जी।
माता, तुम्हारो छल्लो राखो तुम्हारा पास, हमारी
जिबिया नहीं मानऽ जी।

अर्थ—एक मुट्ठी चावल और एक मुट्ठी मूंग की दाल लेकर वह बहन खिचड़ी बना रही है।

खिचड़ी बनाकर उसने अपने भाई को भोजन कराया कि
इतने में वहाँ पड़ोसिन आ गई।
उसने पड़ोसिन से कहा—"हे पड़ोसिन बहन ! तू मेरी धरम
की माँ है,
तू इस बात को मेरे सास-सासुर से मत कहना।
हे बहिन, मैं तुम्हें अपना हार अंगूठी दे दूँगी,
लेकिन तुम इस बात को मेरे सास-ससुर से मत कहना।
इस पर पड़ोसिन कहती है कि—
हे बहन ! तुम अपना हार और अंगूठी अपने पास रखो।
मेरी "जबान" तो कहे बिना नहीं मानेगी।
ज्ञात नहीं फिर उस बहन पर क्या बीती !!



जिसे अपने सौंदर्य की अवहेलना बर्दाश्त नहीं।

स्त्री स्वभावतः सौंद्र्य-प्रिय रही है। उस गीत में एक दिन रनु का पति, बातबात में रनु के रूप की अवहेलना कर बैठता है, वह इसे बर्दाश्त नहीं कर पाती और रूठकर अकेले ही अपने मैके चल देती है। लाचार पति को हार माननी पड़ती है और वह उसे किस तरह मनाकर अपने घर लाता है उसका भी अत्यन्त ही स्नेहिल वर्णन सुनिये। गीत है—

रनुबाई धणियेर जी सु बिनवऽ
पियाजी हम खऽ ते टीकी घड़ावऽ
टीकी का हम सांदुला ॥
रनुबाई तुम खऽ ते टीकी नी साजऽ
तुम रूप का सांवळा।
पियाजी हम सांवळा, हमारी माय मावसी सो भी सावळई
पियाजी हम सांवळा, हमारो कूक बालुड़ो सो भी सांवळो
पियाजी हमारा मंदिर तुम आओ,
तो तुम भी होओगा सांवळा जी।
व्हाँ सी देवी गवरल नीसरी
आगऽ जाइ नऽ पणिहारी खऽ पूछऽ
पाणी भरन्ती हो बइण पणिहारी।
देखी म्हारी पियरा री बाट,
हम काई जाणां वो देवी गवरल।
आगऽ जाई नऽ गुहाळया खऽ पूछ, ऊ बतावऽ तुम्हारो मायक्यो

धेनु चरावन्ता हो भाई गउधन्या
देखी म्हारा पियरा री वाट?
हम रोष भर्‌या संचरिया जी।
हम काई जाणां वो देवी गवरल
आगऽ जाई नऽ किरसाण खऽ पूछऽ
ऊ बतावऽ तुम्हारो मायक्यो।
हाळ हाकन्ता हो भाई किरसाण
देखी म्हारा पियरा री वाट।
हम काई जाणां हो देवी गवरल
आगऽ जाइ नऽ डोकरी खऽ पूछऽ
ऊ बतावऽ तुम्हारो मायक्यो।
सूत कातती ओ बाई डोकरी
देखी म्हारा पियरा री वाट
हम रोष भर्‌या सचरिया जा।
केळ, खजूर का वन भर्‌या जी
त्हाँ छे तुम्हारो पियरो। जाओ वेटी गवरल॥
व्हाँ सु भोला घणियेर निसर्‌या
आगऽ जाइ नऽ पणिहारी सू पूछऽ
पाणि भरन्ती हो पणिहारिन
देखी म्हारी गवरल नार
हम हंसतऽ विणसिया जी।

[और वहाँ से वह क्रमशः चरवाहे, किसान और सूत कातने वाली बुढिया के पास जाता है और अंत में बुढ़िया बतलाती है।]

केळ खजूर का वन भर्‌या जी
व्हाँ छे थारी गवरल नार
आगऽ जाइ नऽ देखी गवरल नार
धणियेर राजा बोलिया
टोकी सोहऽ गवरल नार
हन हसतऽ विणसिया जी ।

अर्थ--एक दिन रनु अपने पति से विनय करती है कि--

"हे प्रियतम, मुझे टीकी गढवा दो। टीकी की मुझे हविस है। इस पर पति कह उठते हैं कि, "हे रनु! टीकी तुम्हे शोभा नहीं देगी। तुम्हारा स्वरूप तो साँवला है।

सुनते ही रूपगर्विता रनु अपना यह अपमान बर्दाश्त नहीं कर पाती और क्रोध से कहती है— "हे प्रिय, हम साँवले हैं। और हमारी माँ और मौसी भी साँवली है।

हम साँवले है और हमारी कूक से जो संतान होगी वह भी साँवली होगी।

हे प्रिय, यदि आप हमारे घर आये तो आप भी साँवले हो जायेंगे।" और इतना कहकर वह रूठकर वहाँ से चल देती है।

आगे जाकर वह पनिहारिन से पूछती है—"हे पानी भरने वाली पनिहारिन बहिन! तुमने हमारे मायके का रास्ता देखा है? हम रूठकर अपने मैके जा रही हैं।

पनिहारिन बोली—"हम क्या जाने, हे देवी रनु। आगे जाकर चरवाहे से पूछ। वह तुम्हें तुम्हारे मैके का रास्ता बता देगा।"

"हे गायें चरानेवाले रखवाले भाई। तुमने हमारे मैके का रास्ता देखा है। हम रूठकर अपने मैके जा रही हैं।"

"हम क्या जाने हे देवी रनु। आगे जाकर हल चलानेवाले किसान से पूछ। वह तुम्हें तुम्हारे मैके का रास्ता बता देगा।"

"हे हल हाँकनेवाले किसान भाई। तुमने हमारे मैके का रास्ता देखा है। हम रूठकर अपने मैके जा रही हैं।"

"हम क्या जाने हे देवी रनु। आगे जाकर सूत कातनेवाली माँ से पूछ। वह तुम्हें तुम्हारे मैके का रास्ता बता देगी।"

"हे सूत कातनेवाली बुढी माँ। तुमने हमारे मैके का रास्ता देखा है। हम रूठकर अपने मैके जा रही हैं।"

वह बोली—"देखो बेटी। यह जो सामने केल और खजूर के वन भरे हुए हैं। वहीं पर तुम्हारा मैका है। बहन वहाँ चली जाओ।"

और तब रनु अपने मैके पहुँच जाती है।

उधर पति भी अपनी पत्नी के इस मौन प्रतिकार से हारकर उसे ढूँढने और मनाने के लिये निकल पड़ते हैं।

रास्ते में वे पानी भरनेवाली पनिहारिन से पूछते हैं, "हे पानी भरनेवाली पनिहारिन, तुमने हमारी गौरवर्णा पत्नी को देखा है। हमने तो सिर्फ विनोद किया था।"

और इस तरह अपनी गलती को विनोद की ओट में छिपाते हुए वह क्रमशः चरवाहे, किसान, और सूत कातनेवाली बुढ़िया से अपनी गौरवर्ण पत्नी के बारे में पूछते हैं। अन्त में सूत कातनेवाली बुढ़िया उन्हें बताती है—"यह जो सामने केल और खजूर के वन भरे हैं न? वहीं है तुम्हारी गौरवर्ण पत्नी।"

वहाँ वे अपनी पत्नी को पा लेते हैं और उससे हँसते हुए कहते हैं—"हे गौरवर्ण रनु। टीका तो तुम्हें शोभा देती है। हमने तो सिर्फ विनोद किया था।

जिसके आँगन में सूर्य के घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई देती है।

गनगौर के त्यौहार में कन्या के रूप में रनु और जवाई के रूप में उसके पति को मान्यता दी गयी है। यही वजह है कि जिससे इन गीतों में क्रमशः बढ़ती हुई कन्या की मनोदशा, विवाह-योग्य युवती का मैके के प्रति ममत्व और ससुराल के प्रति आकर्षण, तथा विवाह के बाद गृहस्थ-जीवन के हास-उल्लास, वेदना, आँसू और आनंद के क्षणों का अत्यंत ही सूक्ष्म विवेचन निहित है।

जिस तरह माँ अपनी कन्या को पाल-पोसकर बड़ा करती है, उसी तरह इसमें जवारों को पाल-पोसकर बड़ा किया जाता है, उनकी धूप और हवा के झकोरों से रक्षा की जाती है, सार-सम्हाल की जाती है, और फिर ब्याह हो जाने पर उन्हें अत्यन्त ही स्नेह से ससुराल पहुँचा दिया जाता है। गनगौर के अन्तिम दो दिनों कन्या और जवाई को लेकर अनेकों मधुर गीतों की सृष्टि हुई है।

इसमें जवाई के रूप में सूर्य अपनी पत्नी रनु को विदा कराने जाता है उसके घोड़ों की हिनहिनाट दूर से ही सुनाई देती है। बड़े ही मान-सम्मान से उनका स्वागत किया जाता है। उनके लिये नये-नये व्यंजन तैयार किये जाते हैं। घर-घर उनकी मान-मनौती की जाती है। उधर रनु के भी हाथों मेंहदी रचाई जाती है; और ससुराल जाने के लिये उसके केश गूंथे जाते हैं। और रास्ते के लिये उसके साथ नाश्ता बाँधा जाता है। अन्त में जाने के दिन तक बार-बार उनके एक दिन और रुकने की मनुहार की जाती है।

और तब स्त्रियाँ बीच में कन्या और जवाई के रूप में गनगौर के रथों को घेरकर उनके आसपास घूमते हुए, ताली और हुमके

की लय के साथ अनेकों विनोद और मस्ती भरे गीत गाती है। ये गीत निमाड़ में "झालरिया" के नाम से प्रसिद्ध हैं; उनमें से एक आप भी सुनिये—

देवी आज म्हारा आंगणा मंऽ लाल छड़ी देवासे।
देवी आज म्हारा आंगणा मंऽ रनुबाई रमता आवसे,
देवी आज म्हारा आंगणा मंऽ गौरबाई रमता आवसे,
देवी आज म्हारा आंगणा मंऽ धणियेरजी का घोड़िला हिस्या,
देवी आज म्हारा आंगणा मंऽ लाल छड़ी देवासे।

अर्थ- हे देवी ! आज मेरे आँगन मे रंगीन चौक पूरे जायेंगे।
हे देवी ! आज मेरे आँगन में रनुबाई सैर के लिये आयेंगी।
हे देवी ! आज मेरे आँगन में गौरबाई सैर के लिये आयेंगी।
हे देवी ! आज मेरे आँगन में सूर्य के घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई दी है।
हे देवी ! आज मेरे आँगन में चन्दन के चौक पूरे जायेगे।



बाड़ी में का चन्दन कटाओ, ओ मेरे मान सम्मान-वाले प्रियतम !

अपने घर कन्या और जंवाई के आने के पश्चात्, इस गीत में उनके उतरने की व्यवस्था, जंवाई के मान-सम्मान, और जंवाई के बिना कन्या के पाट पर न बैठने के मधुर विनोद को लेकर गीत की कड़ियाँ आगे बढ़ती हैं—

बाड़ी मऽको चन्दन कटाड़ो रे, म्हारा मान गुमानी ढोला ।
जैपर गौरबाई खऽ उतारो रे, म्हारा मान गुमानी ढोला ।
रनुबाई एकला नी बठऽ रे, म्हारा मान गुमानी ढोला ।
जैपर धणियेरजी खऽ बठाड़ो रे, म्हारा मान गुमानी ढोला ।

अर्थ—अपनी बाड़ी में का चन्दन कटा लो, ओ मेरे मान-सम्मान वाले प्रियतम !
उसका बाजुट बनाकर उस पर रनुबाई को बैठाओ, ओ मेरे मान-सम्मान वाले प्रियतम !
लेकिन रनु तो उस पर अकेले नहीं बैठेगी, ओ मेरे मान-सम्मान वाले प्रियतम !
उनके साथ धणियेर जी को भी बैठाओ, ओ मेरे मान सम्मान वाले प्रियतम !



लिंबुआ तोडी लावजो

इस गीत में कन्या और जंवाई के घर जाने पर माँ फूली नहीं समाती, और कभी उनके बैठने के लिये अपने बाग का चन्दन कटा कर बाजुट बनवाने, तो कभी डेड़ (डंठल) सहित नीबू तुड़वाकर उनका अचार डलवाने का आग्रह करती है।

इसमें माँ के हृदय भी ममता और उल्लास देखिये—

तोड़ो तोड़ो रे डेडम डेड, लिबुआ तोड़ी लावजो।
म्हारा छोटा देवरिया रो बगा, लिबुआ तोड़ी लावजो।
म्हारी रनुबाई नाखऽ अचार, लिबुआ तोड़ी लावजो।
म्हारा धणियेर राजा चाखऽ अचऽर, लिबुआ तोड़ी लावजो।

अर्थ तोड़ो तोड़ो डंठल सहित नीबू तोड़कर ले आओ।
मेरे छोटे देवर के बगीचे में से नीबू तोड़कर ले आओ।
मेरी रनु उनका अचार डालेगी, नीबू तोड़कर ले आओ।
मेरा जँवाई उस अचार को चखेगा, नीबू तोड़कर जाओ।
तोड़ो तोड़ो, डंडल सहित नीबू तोड़कर ले आओ।



जिसे चटकती चूनर सुहाती है।

गनगौर के त्यौहार के अवसर पर जब रनु अपने पति के साथ मैके आती है, तब अपने जंवाई और कन्या के स्वागत में निम्न-लिखित बधाई-गीत गाया जाता है—

पांच बधावा आया, म्हारा मन भाया,
एही रे बधावा सरखा, घणियेर राजा आया।
घणियेर राजा आया, म्हारी राणी रनुबाई आई।
पेर ओ वड्डा की बेटी, चूनर रूळन्ती,
चटक चूनर बिन शोभा नी आवऽ
पांच बधावा आया, म्हारा मन माया,
गाय का गळ बन्द छूट्या, घड़िला का लेज टूट्या,
सारंगा मोरगां शब्द सुणावऽ
पाँच बधावया आया, म्हारा मन भावऽ

अर्थ—पाँच बधाइयाँ आई हैं, वे मेरे मन को बहुत भा रही हैं।
इन्हीं बधाइयों की तरह मेरे धणियेर राजा आये हैं,
धणियेर राजा आये हैं, और मेरी रानी रनुबाई आई है।
हे बड़े की बेटी, एड़ी तक झूलता हुआ चूनर पहिन ले,
चटकती चूनर के बिना मेरी बच्ची शोभा नहीं देती।
पाँच बधाइयाँ आई हैं, वे मेरे मन को बहुत भा रही हैं।
गाय के गले से बंधा बन्धन छूट गया,
और घड़े के गले से बंधी रस्सी टूट गई,
सारंग और मोर सुहावने शब्द सुना रहे हैं,
पाँच बधाइयाँ आई हैं, वे मेरे मन को बहुत भा रही हैं।



हमें फूल और पत्तियों का खेल, खेल लेने दीजिये !

इस गीत में, नव-विवाहिता रनु के बाल-स्वभाव की एक झाँकी देखिये। विवाह के पश्चात्, एक ओर तो ससुराल के लगातार आमन्त्रण और दूसरी ओर घर के प्रति स्नेह, स्वजनों का प्यार, सहेलियों का संग, और खेलने के प्रति आकर्षण को लेकर, इसमें, रनु के हृदयगतभावों का अत्यन्त ही सरस मधुर वर्णन है। गीत के बोल हैं—

सोन्ना रूपा का घड़ा घड़ीला,
रेशम लम्बी डोर हो, झालरियो ॥
रनुबाई गंगा भरिया, जमुना भरिया,
जाय कवेरी झकोळ हो, झालरियो ॥
बेटी म्हारी, पहिलाज आणऽ ससराजी आया,
काळो घोड़ो लाया हो, झालरियो ॥
पिताजी अबको आणो पछो फिरई देवो,
हम खेली लेवां फूल नऽ पांती हो, झालरियो ॥
बेटी म्हारी, दूसराज आण जेठजी आयां,
धौळो घोड़ो लाया हो, झालरियो ॥
पिताजी अबको आणो पछो फिरई देवो,
हम खेली लेवां फूल नऽ पाती हो, झालरियो ॥
बेटी म्हारी, तीसराज आणऽ देवरजी आया,
छेल बछेरी लाया हो, झालरियो ॥
पिताजी अबको आणो पछो फिरई देवो,
हम खेली लेवां फूल नऽ पाती हो, झालरियो ॥

बेटी म्हारो, चवथाज आणऽ धणियेरजी आया,
हंसलो घोड़ो लाया हो, झालरियो ॥
पिताजी अबको आणो पछो फिरई देवो,
हम खेली लेवां फूल नऽ पाती हो, झालरियो ॥
बेटी म्हारी, ससरो भी फिरी गयो, जेठ भी फिरी गयो
देवर भी फिरी गयो।
हाड़ा राव को कुँवर कन्हैयो,
ओ नी पाछऽ फिरऽ हो, झालरियो ॥
पिताजी जल जमुना को काळो पाणी,
देखी नऽ डर लागऽ हो, झालरियो ॥
बेटी म्हारी, नाव लगावसे, डोंग्या चलावसे,
पार उतारी लई जासे हो, झालरियो ॥
पिताजी चैत-वैसाख की घाम पड़ऽ नऽ,
म्हारी कड़ी को बाळो कोम्हलासे हो, झालरियो ॥
बेटी म्हारी छतरी लगावसे, तम्बू तणावसे,
छावळऽ छावळऽ लई जासे हो, झालरियो ॥

अर्थ–सुवर्ण और चांदी के घड़ों में लम्बी रेशमी डोरें बंधी हुई थीं। और गंगा-यमुना तथा कावेरी का जल हिलोरें ले रहा था। इन्हीं दिनों जब रनु को लेने के लिये जब उसके श्वसुर आये, तो पिता अपनी पुत्री से कहते हैं—हे बेटी, पहिली बार तुम्हें तुम्हारे श्वसुर लेने के लिये आये हैं, और वे काले घोड़े पर सवार हैं। रनु कहती है—हे पिताजी, अबकी बार आप उन्हें वापिस लौटा दीजिये। हम फूल और पत्तियों का खेल खेल लेवें।

दूसरी बार उसके ज्येष्ठ आते हैं तो पिता कहते हैं—हे बेटी,

दूसरी बार तुम्हें तुम्हारे ज्येष्ठ लेने के लिये आये हैं, और वे सफेद घोड़े पर सवार हैं।

रनु कहती है—हे पिताजी, अबकी बार आप उन्हें भी वापिस लौटा दीजिये। हम फूल और पत्तियों का खेल खेल लेवें। तीसरी बार उसके देवर आते हैं। पिता पुनः उससे कहते हैं —हे बेटी, तीसरी बार तुम्हें तुम्हारे देवर लेने के लिये आये हैं, और वे एक चंचल बछेरी पर सवार हैं।

रनु इस बार भी कहती है—हे पिताजी, अबकी बार आप उन्हें भी वापिस लौटा दीजिये। हम फूल और पत्तियों का खेल खेल लेवें।

चौथी बार स्वयम् उसके पति उसे लेने के लिये आये हैं। अतएव पिता कहते हैं—हे बेटी, इस बार स्वयम् तुम्हें तुम्हारे पति लेने के लिये आये हैं, और वे एक सुन्दर हंस-वर्णीय घोड़े पर सवार हैं।

सुनते ही रनु परेशान-सी होकर, अनुनय-विनय के स्वर में कहती है—हे पिताजी, अबकी बार आप उन्हें भी वापिस भेज दीजिये। देखिये, हमें भी कुछ दिन फूल और पत्तियों का खेल तो खेल लेने दीजियेगा।

इस पर, तनिक मुस्कुराहट-सी लिये, गंभीरतापूर्वक उसके पिता उसे समझाते हैं—हे बेटी, तुम्हारे श्वसुर भी लौट गये, जेष्ठ भी लौट गये, देवर भी लौट गये। लेकिन ये हाड़ा वंश के कुँवर कन्हैया हैं, ये तुम्हें अपने साथ लिये बिना कभी वापिस नही लौटेंगे।

तब रनु अपने बाल्य-स्वभाववशात् कहती है—हे पिताजी, यमुना का गहरा काला जल देखकर मुझे भय लगता है। मैं किस तरह अपनी ससुराल जाऊँ?

पिता समझाते हैं— हे बेटी ! वे डोंगा लगवायेंगे, नाव मँगायेंगे, और इस तरह तुम्हें पार उतार कर ले जावेंगे। रनु कहती है--हे पिताजी ! आजकल चैत्र और वैसाख की कड़ी धूप पड़ती है। मेरी गोदी का बच्चा कुम्हला जायेगा। मैं किस तरह अपनी ससुराल जाऊँ ?

पिता समझाते हैं कि ' हे बेटी ! वे छाता लगायेंगे, तम्बू तनवायेंगे और छाया में बच्चे को अपनी गोदी में रखकर ले जावेंगे।''

तब लाचार, एक ही क्षण में अपने सारे बचपन को भुलाकर, रनु को अपने घर, सहेलियों का संग-साथ, गाँव, स्वजन, और खेलों को भी छोड़कर, पतिदेव के साथ जाना ही पड़ता है !



जहां मोती नहीं अन्न की भिक्षा दी जाती है

इस गीत में एक समृद्ध इलाके के खेतिहर किसान की बेटी के रूप में रनु का वर्णन किया है जो एक देहात में ही किसान के घर ब्याही गई है। देखिये, उसके यहाँ जब एक तपस्विनी भिक्षा के लिये आती है तो किसतरह भिक्षा के माध्यम से भी इसमें मोतियों की अपेक्षा अन्न की महत्ता सिद्ध की गई है।

भर डोंगर मंऽ झुला बध्या हो, म्हारी रनुबाई झुलवा जाय जी।
झुलतज् झुलतज् तपेसरी आई, हम खऽ ते भिक्षा दे दो जी।
थाळ भरी मोती राणी रनुबाई न लिया, ये भिक्षा तुम लेवो जी।
काई करूं हो थारा माणक मोती, अन्न की भिक्षा देवो जी।
खेत नी वायो, खळो नी घायो, कांय की भिक्षा देवो जी।
आवसे रे चईत को महीनो, जासां हमारा पीयर जी।
लावसा रे गहुंआ की बाळद, तवं जाई भिक्षा दीसां जी।

अर्थ—ऊँची-नीची घाटियों में झूला बँधा है।
जहाँ मेरी रनु झूलने के लिये जाती है।
झूलते-झूलते एक तपस्विनी आई और बोली, हे बहिन हमें भिक्षा दो।
रनु ने एक थाल में मोती संजोये और बोली हे बहिन यह भिक्षा लो।

तपस्विनी ने कहा—हम इस भिक्षा को लेकर क्या करें, हमें तो अन्न की भिक्षा चाहिये।

रनु बोली—अभी हमने खेत नहीं बोया, खला नही वाया, हम तुम्हें अन्न की भिक्षा कहाँ से दें।
चैत्र का महीना आवेगा, तब हम अपने मैके जायेंगे।
वहाँ से हम गेहूं की बालद लायेंगे, तब हम तुम्हें अन्न की भिक्षा देंगे।



और रथ बढ़ता ही गया !

गनगौर के त्यौहार में रनु के रूप में अपनी कन्या का पालन-पोषण करने, उसका लाड़-प्यार लड़ाने, बड़ी होने पर उसका विवाह रचाने, उसे ससुराल विदा करने, और बाद में पुनः एक बार जवाई सहित कन्या के घर आने पर अत्यन्त ही हास और उल्लास से उनका स्वागत-सत्कार कर बाद में अपनी बेटी को जवाई के साथ विदा करने तक की अवस्था का अत्यन्त हृदय-स्पर्शी चित्रण है।

यह गनगौर व्रत की समाप्ति के समय गाया जानेवाला गीत है। इसमें, जवाई के साथ रथ पर बैठ कर विदा होती हुई कन्या एवम् उसे पहुँचा कर उदास खाली मन लौटती हुई माँ की मन-स्थिति का अत्यम्त ही हृदय-स्पर्शी चित्रण है।

ससुराल जानेवाली अपनी बेटी को अनेकों वस्त्राभूषण देने के बाद भी माँ का मन नहीं भरता, और उसके विदा होने के क्षणों तक उसे एक न एक वस्तु की याद आती रहती है। ऐसे में गीत चलता है—

माय कहे म्हारी रुनझुन बेटी, बेंदी बिना उपाणी हो।
काई करूं ओ, अवंऽ बेंदी खऽ, म्हारो सुभान उतर्‌यो जाय हो
सुभान उतर्‌यो, परवत चैढ़्यो, रीता रथ घर आवऽ हो।।

अर्थ—माँ कहती है की मेरी रुनझुन बेटी बेंदी बिना तो सूनी ही लगती है।

इस पर, लड़की कहती है–"हे माँ! अब मैं बेंदी को क्या करूँ ? मेरे तो जाने का समय हो गया। देखो, मुझे ले जाने के लिये वे (सूर्यदेव) कितने उतावले हुए जा रहे हैं। मुझे तो आशीर्वाद दो माँ आशीर्वाद। देखो, मैं जा रही हूँ।"

और सूर्य का रथ, पर्वत पर चढ़ कर, उसकी ओट में विदा हो जाता है और खाली रथ घर लौट आते हैं!



नारी जीवन का अभिशाप

मातृत्व से बढ़कर नारी के लिये वरदान और बन्ध्यापन से बढ़कर अभिशाप नहीं होता।

जनम-जनम से नारी एक वरदान माँगती आई है—"मेरी माँग सूनी न हो, गोद सूनी हो, घर सूना न हो।" अनेकों व्रत-उपवास करके भी उसने अपने लिये वैभव या ऐश्वर्य नहीं चाहा, वरन् "दूध-पूत और अहवात" की माँग की। अखण्ड सौभाग्य-वती एवम् पुत्र-पौत्रवती होने के आशीर्वाद में ही मानो अपना सब कुछ पाने का वरदान पा लिया है।

इसी एक सन्तान के अभाव में उसका जीवन किस तरह निरर्थक हो उठता है, और पारिवारिक -जनों की ओर से भी उसे कितना व्यंग और उपेक्षा सहनी होती है, इसी व्यथा और दर्द को लेकर निमाड़ी के 'वाँजुली' गीतों की सृष्टि हुई है। वाँजुली याने बन्ध्या स्त्री के गीत।

देखिये, इस गीत में यह स्त्री इस बात से कितनी दुःखी है की उसे "बाँझ बाई" तो सब कहते हैं, लेकिन 'बच्चे की माँ' कहकर कोई नहीं पुकारता। अपनी इस अवस्था से ऊबकर जब वह मरना चाहती है, तो उसे नागिन भी नहीं डसती, वृक्ष की डाल भी उस पर नहीं टूटती और नदी भी उसे बहाकर सिर्फ इसलिये नहीं ले जाती कि कहीं उसका स्पर्श कर वह स्वयम् भी बन्ध्या न हो उठें! जिसके स्पर्श से मौत को भी अपने बन्ध्या होने का डर हो—बन्ध्या-जीवन की ऐसी निर्मम आलोचना से युक्त एक गीत के बोल सुनिये—

"माता बाँझबाई बाँझबाई सब कहे हो माता,
नही कहे वाळा की माय हो नादन ॥ वाँजुली ॥

माता चार पहेर रात हाऊँ भुई मऽ सूती,
नहीं डसऽ वासुकी नाग हो रनादेव ।। वाँजुली ।।
माता चार पहेर रात हाऊँ अम्बा-बन सूती,
नही टूटी अम्वा की डाल हो रनादेव ।। वाँजुली ।।
माता चार पहेर रात हाऊँ रस्ता मऽ सूती,
नही आई रेवा पूर हो रनादेव ।। वाँजुली ।।

अर्थ—हे माँ! बाँझबाई, बाँझबाई तो मुझे सब कोई कहते हैं,
लेकिन कोई बच्चे की माँ कहकर नहीं पुकारता! मैं बन्ध्या जो हूँ!
हे माँ चार प्रहर रात मैं ज़मीन पर सोई लेकिन वासुकी नाग
ने मुझे नहीं डसा, मैं बन्ध्या जो हूँ!
हे माँ, चार प्रहर रात मैं आम्र-वन में सोई, लेकिन आम
की डाल भी मुझ पर नहीं टूटी। मैं बन्ध्या जो हूँ!
हे माँ, चार प्रहर रात मैं रास्ते मे जाकर लेटी, लेकिन रेवा
की बाढ भी मुझे बहाकर नहीं ले गयी। मैं बन्ध्या जो हूँ!

दूसरे गीत में एक स्त्री की मानसिक व्यथा देखिये। अपने घर में रखे पानी से भरे बर्तन और साफ-सुथरे आँगन को देखकर वह सोचती है: "यह सारी व्यवस्थितता और शांति भी किस काम की यदि घर में ऊधम मचानेवाले बच्चे न हों?"

इसी भाव को व्यक्त करते हुए गीत के बोल हैः—

'माता छाब्या-लीप्या हो म्हारा ओटला,
माता नहीं म्हारो खेलणहार
जळ जमुना अम्बो मौरियो ।।
माता मांज्या-धोया हो म्हारा बेडुला,

माता नहीं म्हारो ढोळणहार
जळ जमुना अम्बो मोरियो ॥

माता राम-रसोई म्हारी सीगऽ चढ़ी,
माता नहीं म्हारो जीमणहार
जळ जमुना अम्बो मोरियो ॥

माता एक दीजो हो लूलो, पांगळो,
म्हारी संपत को रखवाळो
जळ जमुना अम्बो मोरियो ॥

अर्थ—हे माँ, मेरे यहाँ साफ-सुथरे ओटले हैं, लेकिन कोई उन पर खेलनेवाला नहीं है !

यमुना किनारे आम-वृक्ष में मौर छाये हैं ।

हे माँ, मेरे यहाँ उजले-धोये पानी से भरे बर्तन हैं, लेकिन कोई उन्हें लुढ़काने वाला नहीं है।

यमुना-किनारे आम-वृक्ष में मौरे छाये हैं।

हे माँ, मेरे यहाँ भरापूरा भण्डार है, लेकिन कोई उसे खानेवाला नहीं है !

यमुना-किनारे आम-वृक्ष में मौर छाये हैं।

हे माँ, मुझे लूली-लँगड़ी ही सही लेकिन एक सन्तान दे जो मेरी सम्पत्ति का रखवाला हो सके।

यहाँ "आम्र-वृक्ष" का प्रतीक के रूप में उपयोग किया गया है। उसेमें आये हुए मौरों को देखकर उसे भी अपनी सन्तान की याद हो आती है।

तीसरे गीत में एक स्त्री जब दूसरों के बच्चों को खेलकर या पाठशाला से घर लौटते देखती है तो एक क्षण उसमें भी अपने

बच्चे के कहीं से लौटकर घर आने की याद जागती है। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे ख्याल आता है कि उसका अपना तो कोई बच्चा नहीं! जिनके बच्चे खेलने गये हैं, वे खेलकर घर लौटेंगे। पढ़ने गये हैं, वे पढ़कर घर लौटेंगे। लेकिन उसका बच्चा वहाँ से आवेगा? यह सब सोचते ही उसका मन किस कदर हाहाकार कर उठता है, इसका वर्णन सुनिये—

"हाथ मऽ आरती, न खोळा मऽ पाती,
चलो म्हारी सई ओ, रनुबाई पूजाँ।
पूजतजऽ पूजत्ऽ ससराजी न देख्या,
केतरा जाया पूत, म्हारी बहू पर वाँजुली।
असला-मसला कहाँ तक सहूँ हो,
एक चोट का तो टूटो म्हारी माता, डोंगर की देवी।
हळवा गयो होय तो हळई घर आवऽ,
खेलवा गयो होय तो खेली घर आवऽ
भणवा गयो होय तो भणो घर आवऽ,
पालणा को बाळो पालणऽ झूल,
सड़क को बाळो सड़क पर खेलऽ,
मजघर को बाळो मजघर जीमऽ म्हारी माता!
सोना की टोपली न मोती का जवारा,
दुहिरा रथ सिगारूँ म्हारी माता!
एक बालूड़ो द!!"

अर्थ—हाथ में आरती और आँचल में पाती लेकर, हे सहेलियाँ! चलो—अपन रनुदेवी की पूजा करें।

पूजा करते ही करते श्वसुरजी ने देख लिया।
तो बोले, हे मेरी बांझ बहू,
तुमने कितने पुत्रों को जन्म दिया ?
हे माता, मैं इन कटाक्षों को कहाँ तक सहूँ ?

तुम एक बार तो मुझ पर प्रसन्न होओ और मुझे एक संतान दे दो। ओ मेरी डोंगर की माता !

जिनके बच्चे हलने गये हैं, हलकर घर आवेंगे,
खेलने गये हैं, वे खेलकर घर आवेंगे,
पढ़ने गये है वे, पढ़कर घर लौटेंगे,
पलने का बच्चा पलने में झूलता होगा,
और, मजघर का बच्चा मजघर में जीमेगा।
लेकिन, मेरा बच्चा कहाँ से घर लौटेगा ?
हे देवी ! मैं सोने की टोकनी में तुम्हारा चाँदी से जाग बोऊँगी,
तुम एक बार तो मुझ पर प्रसन्न होओ, और मुझे एक संतान दे दो !!

चौथे गीत में सतानदाता रनु के व्रत का माहात्म्य दर्शाया गया है।

"हरा-नीळा बाँस की वाड़ी हो रनादेव।
धवळा घुरता दुई नाँद्या हो रनादेव।
चाँद-सूरज दुई दीवला हो रनादेव।
पेऴो पेरी पीयर सिधारया हो रनादेव।
पाछऽ लागी बाँझ पुकारऽ हो रनादेव,
बाँझ घर झूलना झुलावो हो रनादेव।
तवऽ जाइ पीयर सिधारो हो रनादेव !!

अर्थ—हरे-नीले बाँस की बाड़ी है, हे रनादेव ।
उसके रथ में दो सफेद बैल जुते हैं, हे रनादेव ।
उसके यहाँ चाँद और सूर्य दो दीपक हैं, हे रनादेव ।
वह पीला वस्त्र पहिनकर मैके जा रही है, हे रनादेव ।
उसे पीछे से बाँझ स्त्री पुकार रही है, हे रनादेव ।
बाँझ स्त्री के घर पालना झुला दो, हे रनादेव ।
तब तुम अपने मैके जाओ, हे रनादेव !



वन्ध्या का निरीह जीवन

वन्ध्या स्त्री के सम्बन्ध में अनेकों निर्मम उपमाएँ सुनी हैं। लेकिन इस गीत में तो मानो पराकाष्ठा कर दी गई है। इसमें उसकी तुलना पानी पर खींची लकीर, और बालू में से बनी राह से की गई है। कैसी निर्मम कल्पना है। मानो, महज एक सन्तान के अभाव में, पानी पर खींची लकीर की तरह उसका इस धरती पर कोई अस्तित्व ही नहीं, उसे अपने पद-चिह्न छोड़ने का भी अधिकार नहीं।

लेकिन रेत की तरह निर्मम समाज पर भले ही उसे अपने पद-चिह्न छोड़ने का अधिकार न हो, गीतों की दुनिया में तो आज भी उसके दर्द की गीली तस्वीरें ज्यो की त्यों अंकित हैं। देखिये—

पाणी मऽ की पगडण्डी हो, माता व्याळु मंऽ की वाट जी।
रनुबाई पीयर सचरिया जी, माता सई नऽ ली संगात जी।
एक सव ली माता वांजुली, ओ, दुई सव बाळा की माय जी,
बाळा की माय थारी सेवा कर हो, वाभ नऽ संभो द्वार जी।
हेडूं कटारी लहलहे हो, म्हारो ए जीव तजूँ थारा द्वार जी,
उभी रहो, उभी रहो, वांजुली हो, माता मखऽ हूँडण दऽ भंडार जी।
सगळो भंडार हऊ ढूंडी आई, थारा करमऽ नी तानो बाळ जी।

अर्थ—पानी में की पगडण्डी और बालू में से बनी राह की तरह, रनु अपने मैके जा रही है, और साथ में अपनी सहेलियों को लिये हुए है।

उनमें एक सौ वन्ध्या स्त्रियाँ हैं, और दो सौ बच्चे की माँ हैं । बच्चे की माँ उसकी सेवा कर रही है, और वन्ध्या ने अपने द्वार बन्द कर लिये हैं ।

वह बोली—"हे माँ! आज मैं अपनी तेज कटारी निकालकर तेरे दरवाजे अपने प्राण दे दूँगी।"

इस पर रनु कहती है कि—"ठहरो, ठहरो हे बहिन! मुझे अपने भंडार में खोज लेने दो।"

और फिर वह अत्यन्त निराश होकर कहती है—"मैं अपना समूचा भंडार खोज आई, लेकिन हे बहिन! तुम्हारे भाग्य में एक भी सन्तान नहीं है।"



वन्ध्या की मनोव्यथा

लोक-गीतों में वन्ध्या स्त्री की मनोव्यथा इतनी सजीव होकर उतरी है कि आँखों में आँसू छलछला आते हैं। अनेकों अपमान और उपेक्षाएँ सहने के बाद भी, जब वह दूसरों की सन्तान को अपना मान कर सन्तोष करना चाहती है, तो निर्मम समाज को यह भी बर्दाश्त नहीं होता, और वह किस तरह उसकी भावनाओं को चूर-चूर कर देता है, इसका निर्मम वर्णन सुनिये—

ढेळ बठी हो रनुबाई बाळो धवाड़ऽ
वांजुली झाकी झाको जाय—
काई झाको, काई देखो हो, जलम की वाँझ,
थारी पड़ऽ हो हमखऽ छावळई।
एतरो गरब क्यो बोलो रनादेव,
सासू का जाया म्हारा यहां अति घणा।
सासू का जाया थारा देवर-जेठ कव्हासे,
तुम सिरज्या जलम की वाँझ।
एतरो गरब क्यो बोलो रनादेव,
देवर का जाया म्हारा यहां अति घणा।
देवर का जाया थारा नात्या-पोत्या कव्हासे,
तुम सिरज्या जलम की वाँझ।
एतरो गरब क्यों बोलो रनादेव,
जेठ का जाया म्हारा यहां अति घणा,
जेठ का जाया थारा भतीजा कव्हासे,
तुम सिरज्या जलम की वाँझ।

अर्थ—देहलीज पर बैठकर रनु अपने बच्चे को दूध पिला रही थी।
कि इसी बीच वन्ध्या स्त्री उसे झाँक-झाँक कर देखने लगी।
इस पर रनु ने कहा कि "तुम क्या झाँकती हो, क्या देखती
हो, हे जन्म की वन्ध्या! हमारे बच्चे पर तुम्हारी छाया गिरेगी।"
वह बोली, "इतना गर्वीला बोल क्यों बोलती हो बहिन!
"मेरी सास की भी अनेकों सन्तान हैं।"
रनु ने कहा, "सास की सन्तानें तुम्हारे देवर और जेठ कहलायेंगी,
लेकिन तुम्हें तो लोग जन्म की वन्ध्या ही कहेंगे।"
वह बोली, "इतना गर्वीला बोल क्यों बोलती हो बहिन!
मेरे देवर की भी अनेकों सन्तान हैं।"
रनु ने कहा, "देवर की सन्तान तुम्हारे नाते-पोते कहायेंगी,
लेकिन तुम्हें तो लोग जन्म की वन्ध्या ही कहेंगे।"
वह बोली, "इतना गर्वीला बोल क्यों बोलती हो बहिन!
मेरे जेठ को भी अनेकों सन्तान हैं।"
रनु ने कहा, "जेठ की सन्तान तुम्हारे भतीजे कहलायेंगे,
लेकिन तुम्हें तो लोग जन्म की वन्ध्या ही कहेंगे।"
ज्ञात नहीं इस मर्मान्तिक चोट को उसने कैसे सहा!



एक बच्चे के बिना जिसका सम्पूर्ण जीवन निरर्थक है।

नारी का सम्पूर्ण एवम् सर्वोच्च विकास "मातृत्व" में है। कन्या, बहिन या पत्नी होने पर भी ऐसा कुछ नहीं हो पाती जिससे वह पुरुष-वर्ग की श्रद्धापात्र कही जा सके।

साथ में, मातृत्व की परम आकांक्षा से युक्त एक गीत देखिये—

माथा पर लीवि गोबर टोपली हो,
तू कां चली नार ॥
जै मठ रनुबाई आसन बठिया,
ओ मठ लिपवा जावां ओ रनादेव,
एक बालुडो दऽ ॥
एक बालुडा का कारण, म्हारो जनम अकारथ जाय,
एक दीजे लूलो पांगलो हो, म्हारी सम्पति को रखवालो,
म्हारा कुळ को हो उजाळो,
एक बालुड़ो दऽ ॥

अर्थ—"हे नारी! अपने सिर पर गोबर की टोकनी लेकर तुम कहाँ जा रही हो?"

"हे देव! जिस मठ में देवी रनुबाई आसन लगाकर बैठी हुई हैं, मैं उसी मठ को लीपने के लिये जा रही हूँ।

"मुझे एक बालक दो।"

"एक बालक के न होने से मेरा सम्पूर्ण जीवन ही व्यर्थ

जा रहा है।"

"हे देवी ! चाहे तुम मुझे एक लूला-लंगड़ा ही बच्चा दे दो।

वह मेरी सम्पत्ति का रखवाला होगा।

और मेरे कुटुंब का उजियाला रहेगा। हे देवी मुझे एक बालक दो !"



जिसे सौत के साल का दुःख है !

साधारणतः ससुराल में स्त्री के दुःख के दो ही कारण रहे हैं—एक वो अपने मैके का दूर होना, और दूसरे सास का सौतेली होना।

लेकिन साथ के गीत में नारी-हृदय की व्यथा के एक और कारण का वर्णन किया गया हैं, और वह है अपने पति के द्वारा दूसरा विवाह रचाने की धुन।

लोकगीतों की दुनिया में उसका यह दुःख "सौतिया साल के दुःख" के नाम से प्रसिद्ध रहा है।

साथ ही, इसमें रनु के माध्यम से स्त्री के, स्त्री के प्रति, प्यार का भी अत्यन्त ही सजीव वर्णन है—

सासरो छोड़यो देवी दूर, पीयर मेढो रोपियो जी।
तांबा खण्या रे तळाव, अमरित अम्बो मवरियो जी ॥
रनुबाई हुआ पणिहार, वहा रड़ऽ सासर-वासेण जी।
की थारो पीयर दूर, की थारी सासू सौतेली जी।
नई म्हारो पीयर दूर, नई म्हारी सासू सौतेली जी।
हम पर "सऊक को साल," ते गुण रड़ऽ सासरवासेण जी ॥
हेड़ूं थारो "सऊक को साल", बांझ घर पालणो
झुलाड़सां जी।

अर्थ—एक दिन रनु अपने ससुराल से दूर मैके में ठहरी हुई है। सुन्दर तालाब का किनारा था, और पास ही अमृत की तरह स्वादिष्ट आम्रवृक्ष मौरे हुए थे।

यहीं, एक दिन रनु जब पानी भरने के लिये निकली तो उसने देखा कि एक ससुराल-वासिन बहू रो रही है।
उसने पूछा कि "हे बहिन! क्या तुम्हारा पीहर दूर है? या तुम्हारी सास सौतेली है।"
वह बोली—"न तो मेरा पीहर दूर है, और न सास ही सौतेली है। मेरे रोने का कारण तो यह है कि यह वर्ष हम पर सौत का साल बनकर आया है।"
सुनते ही रनु ने कहा—"हे बहिन! रो मत। मैं बाँझ के यहाँ भी झूला झुलवा दूँगी, और इस तरह तुम्हारे "सौत के साल के संकट" को टाल दूँगी।"



श्रृंगार गीत

लोकगीतों की एक एक बहू के चित्रण पर रीति-काल की सौ सौ मुग्धायें, खंडितायें और धीरायें निछावर की जा सकती हैं। क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी है और वे अलंकारों के लदी होकर भी निष्प्राण हैं।

हिन्दी साहित्य की भूमिका/१३०

श्री आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

जिसका घर दूर, और घागर भारी है।

जिस तरह वर्षा में मयूर और सफलता की आशा में आदमी का मन-मयूर नाच उठता है, उसी तरह आनन्द और उल्लास के क्षणों में स्त्रियों के द्वारा जमकर नृत्य और गीत का आयोजन होता आया है।

चाहे बच्चे का जन्म हो, या कन्या का लग्न, रास गर्बा का उत्सव हो, पूजा-अनुष्ठान का व्रत, ये सब नृत्य गीत के बिना खाली हैं। इसमें गनगौर का त्यौहार तो मानो सब का अग्रणी बनकर आता है। इसे यदि नृत्य गीतों का त्यौहार कहें तो भी अत्युक्ति नहीं।

इन दिनों स्त्रियों के सुमधुर कण्ठ से निकले गीत के बोलों के साथ जब हाथ की ताली और पाँव के ठुमके की लय पर सामूहिक नृत्य का समारोह चलता है, तब धरती भी मानो उसके स्वर में स्वर मिलाये, नाचती-गाती सी प्रतीत होती है।

देखिये, आनंद और उल्लास के ऐसे ही क्षणों में पानी भरने के लिये जाने से इन्कार करने वाली इस युवती की शिकायत कितनी सच्ची है।

उसका कहना है—

घोड़ी वठी नऽ धणियेरजी आया, रनुबाई करऽ
सिगार हो चंदा
कसी भरी लाऊं जमुना को पाणी,
घर म्हारो दूर घागर म्हारी भारी,
घाटी चढ़ी हाऊं हारी हो चंदा
कसी भरी लाऊं जमुना को पाणी।

अर्थ—घोड़ी पर बैठकर पतिदेव आये, और मैं शृङ्गार कर रही हूँ।

अब मैं किस तरह जमुना का पानी भर कर लाऊँ

मेरा घर दूर, और घागर भारी है,

और इस घाटी को चढ़ चढ़कर तो मैं हार चुकी हूँ।

अब मैं किस तरह जमुनाजी का पानी भर कर लाऊँ,

मेरा घर दूर और घागर भारी है।



जिसे पानी भरने में नजर लगने का अन्देशा है।

इन नृत्य-गीतों में आनंद और उल्लास ही नहीं, नारी की नाजुक मिजाजी का भी अत्यंत ही सजीव चित्रण हुआ है। इनमें एक ओर यदि किसी युवती को पानी भरने जाने में घागर के भारी होने की शिकायत है, तो किसी को यमुना के दूर होने की। जरा इस युवती को इस कुयें से पानी भरने जाने से इस लिये इन्कार है कि यहाँ उसे नजर लग जाने का अन्देशा है। नजर लग जाने का? जी नहीं, हवा लग जाने का भी—

कुवां पाणी कसी जाऊँ रे, नजर लग जाये।
नजर लगी जाय, हवा लगी जाय॥
म्हारा साहेबजी का बाग घणा छे,
फुलड़ा तोड़ण कसी जाऊँ रे, नजर लगी जाये।
म्हारा साहेबजी का कुवां घणा छे,
पाणी भरणा कसी जाऊँ रे, नजर लगी जाय।
नजर लगी जाय, हवा लगी जाय॥

अर्थ—मैं कुये से पानी भरने कैसे जाऊँ, मुझे नजर लग जायेगी।
नजर लग जायेगी। अजी हाँ! हवा लग जायेगी॥
मेरे प्रियतम के बगीचे बहुत हैं,
लेकिन मैं फूल चुनने कैसे जाऊँ, नजर लग जायेगी।
नजर लग जायेगी। अजी हो! हवा लग जायेगी।
मेरे प्रियतम के कुये बहुत से हैं,
लेकिन मैं पानी लेने कैसे जाऊँ, नजर लग जायेगी॥
नजर लग जायेगी। अजी हाँ! हवा लग जायेगी॥

जिसे गेहूं काटने जाने से इन्कार है !

यह युवती गेहूं काटने के बजाय घर का कोई-सा भी काम करने के लिये तैयार है। जरा इसकी बात भी सुन लीजिये !

गेहू काटण नहीं जाऊं रे साहेबजी, गेहू काटण नही जाऊ।
गेहू काटण म्हारी भौजाई खऽ भेजो,
उनकी रसोई हम रांधा साहेबजी, गेहू काटण नहीं जाऊं।
गेहू काटण म्हारी देराणी खऽ भेजो,
उनको पाणी हम भरां साहेबजी, गेहूं काटण नही जाऊं।
गेहूं काटण म्हारी सौतऽ भेजो,
हम सेजां हम सोवां साहेब जी, गेहू काटण नही जाऊ।

अर्थ–मैं गेहूं काटने नहीं जाऊँगी, हे प्रिय ! मैं गेहूं काटने नहीं जाऊँगी।
गेहूं काटने के लिये मेरी भौजी को भेज दो,
मैं उनके हिस्से की रसोई बना लूंगी, लेकिन गेहूं काटने नहीं जाऊँगी।

गेहूं काटने के लिये मेरी देवरानी को भेज दो,
मैं उसके हिस्से का पानी भर लूँगी, लेकिन गेहू काटने नहीं जाऊँगी।

अंत में वह सौत पर मधुरी चुटकी लेते हुए कहती है—
गेहूं काटने के लिये मेरी सौत को भेज दो,
मैं उसकी सेज पर सोये रहूँगी, लेकिन गेहूं काटने नहीं जाऊँगी।

❋

मेरे गहने चन्द्रमा के प्रकाश में बनाना।

इस गीत में एक नवयुवति सोनी से आग्रह करती है कि वह उसके गहने चन्द्रमा के प्रकाश में ही बनाये, कारण उसका पति उन्हें रात में ही निरखने वाला है। कैसी सुहावनी मनुहार है।

इसमें चन्द्रमा की कान्ति, गहनों की उज्ज्वल आभा, और दिये की ज्योति के साथ निरखने वाले पति के निर्मल प्यार का अद्‌भुत समन्वय साधा गया है।

इसकी पहली पंक्ति केवल सौन्दर्य के प्रतीक के रूप में चलती है।

नीळो तरबूजी केतरो सुहावणो लगऽ
तागली जो घड़जे सोनी भाई, चांद का उजाळऽ
परण्यो निरखऽ दिवला री जोत।
नीळो तरबूजो केतरो सुहावणो लगऽ
हार जो घड़जे सोनी भाई चांद का उजाळ
परण्यो निरखऽ दिवला री जोत।
नीळो तरबूजो केतरो सुहावणो लगऽ

अर्थ—नीला तरबूजा कितना सुहावना लग रहा है।
मेरी तागली को हे सोनी भाई, चन्द्रमा के प्रकाश में बनाना
मेरे प्रियतम उसे दिये के उजाले रात में ही निरखने वाले हैं।
नीला तरबूजा कितना सुहावना लग रहा है।
मेरे हार को हे सोनी भाई, चन्द्रमा के प्रकाश में बनाना
मेरे प्रियतम उसे दिये के उजाले रात में ही निरखने वाले हैं।
नीला तरबूजा कितना सुहावना लग रहा है।



तुम्हारे आभूषणों का रंग उजला है, और मेरे प्रियतम का स्वभाव रंगीन।

जैसे ही मृदंग पर थाप पड़ती है, नृत्य करने वाली युवती के पैर थिरकने लगते हैं। जब वह नृत्य में तन्मय होती है, तो उसके अंग-प्रत्यंग ही नहीं, आभूषण भी नृत्य करने लगते हैं।

देखिये, झांझ और मृदंग के स्वर के साथ नृत्य करने वाली इस युवती के गले का हार किस कदर बेतरतीब से हिल-डुलकर सबका ध्यान आकर्षित करता है।

वह युवती स्वयम् तो नृत्य में संलग्न है, लेकिन साथ ही अपनी सहेलियों को सावधान भी करते जा रही है कि तुम मेरी गली में मत आया करो, कारण तुम्हारे आभूषणों का रंग जरा उजला है, और मेरे प्रियतम का स्वभाव जरा रंगीन—

झांझ वाजऽ मिरधिग वाजऽ, म्हारो हार हिलोळा लेय।
बेसर वाळई छोरी हो, तू म्हारो गली मत आव।
थारी बेसर छे झळकणई, म्हारा प्रभुजी को खोटो स्वभाव॥
तूसी वाळई छोरी हो, तू म्हारी गली मत आव।
थारी तूसी छे झळकणई, म्हारा प्रभुजी को खोटो स्वभाव॥

अर्थ—झांझ बज रही है, मृदंग बज रही है,
और मेरे गले का हार हिलोरें ले रहा है।
ओ बेसर वाली लड़की, तू मेरी गली में मत आया कर

देख, तेरी बेसर जरा चमकने वाली है, और मेरे स्वामी का
स्वभाव जरा रंगीन।
ओ तूसी वाली लड़की, तू मेरी गली में मत आया कर
तेरी तूसी जरा चमकने वाली है, और मेरे स्वामी का स्वभाव
जरा रंगीन।



जिसे सुहावना शरद प्रिय है !

यह भी एक नृत्य-गीत है। इसमें एक युवती शरद ऋतु के प्रति अपने आकर्षण का कारण बताते हुए कहती है—

अमुक भाई वाळई खऽ राखड़ी भरात,
पिया हमखऽ ते राखड़ी घड़ई देव्, असी गरमी से।
उंढाळई सेज पिया मोह न् सुहाये,
जुदा जुदा पलग सुळई देव, असी गरमी से।
चौमासा की सेज पिया मोहे न सुहाये,
पिया हमखऽ से पियर पहुंचई देव्, असी गरमी से।
स्याळा की सेज पिया बहुत रसाळई,
पिया हमखऽ ते हिया से लगई लेव्, इनी गरमी से।

अर्थ—अमुक भाई की पत्नी को ता राखड़ी का शौक है,
हे प्रिय, मुझे भी एक राखड़ी घड़वा दो,
इस गरमी से तो मैं ऊब चुकी।
गरमी की सेज हे प्रिय! मुझे नहीं सुहाती,
हमें तो अलग अलग पलंग डलवा दो,
इस गरमी से तो मैं ऊब चुकी।
चौमासे की सेज हे प्रिय! मुझे नहीं सुहाती,
हमें तो अपने मैके पहुँचा दो,
इस गरमी से तो मैं ऊब चुकी।
जाड़े की सेज हे प्रिय! बहुत ही रसीली है,
इसमें तो मुझे अपने हृदय से लगा लो,
इस गरमी से तो मैं ऊब चुकी

हे मृगनयनी !

जिस तरह आभूषण के बिना नारी और नारी के बिना काव्य सूना है, उसी तरह श्रृङ्गार के बिना साहित्य सूना है।

नारी को यदि काव्य की आत्मा कहें तो, काव्य साहित्य की आत्मा है। और श्रृङ्गार उसका सौंदर्य-प्रसाधन। यही वजह है कि जिससे नारी को लेकर प्रचुर श्रृङ्गार साहित्य की सृष्टि हुई है।

लेकिन एक ओर जहाँ संस्कृत साहित्य नारी के उद्दाम चित्रण और हिन्दी साहित्य उसके नख-शिख वर्णन में उलझा है, वहाँ लोक-साहित्य में सूक्ष्म प्रतीकों के सहारे श्रृङ्गार का ऐसा निरूपण किया गया है कि, जिसे विवाह जैसे मांगलिक कार्यों के अवसर भी स्त्रियों के द्वारा स्वच्छंदतापूर्वक गाया जा सके। इनकी विशेषता इनके वासनाजन्य अश्लील चित्रण से परे ग्राहस्थिक जीवन के निर्मल प्यार के चित्र संजोने में हैं।

देखिये, इस गीत में महज गहनों के माध्यम से श्रृङ्गार किस कदर निखरा है।

बात यह होती है कि विवाह की पहली रात पति अपनी पत्नी से कहता है कि हे प्रिये, तुम्हारे गहने मेरे शरीर में गड़ते हैं। तुम इन्हें निकालकर एक ओर रख दो, फिर पहन लेना, बस इतनी सी बात के जरिये प्रगाढ़ आलिंगन का कैसा सजीव चित्र संजोया गया है।

"थारा माथा की बिंदी-म्हारा कपाळ खऽ लगऽ।
बिन्दी हेड़ डब्बी मेळ, फिरी पेरजे वो मिरगा नयनी॥
थारा माथा की बेसर म्हारी दाड़ी मऽ लगऽ।
बेसर हेड़ डब्बी मेळ, फिरी पेरजे वो मिरगा नयनी॥

थारा गळा की तागली म्हारी छाती मऽ लगऽ।
तागली हेड़ खूटी मेळ, फिरी पेरजे ओ मिरगा नयनी ।।
थारा हाथ का बाजूबन्द म्हारी, पूट मऽ लगऽ।
बाजूबन्द हेड़ आळऽ मेळ, फिरी पेरजे ओ मिरगा नयनी ।।
थारी कड़ी को कदरा, म्हारी कम्मर मऽ लगऽ।
कदरो हेड़ उस्यऽ मेळ फिरी पेरजे ओ मिरगा नयनी ।।
थारा पांय का कड़ा म्हारा पांय मऽ लगऽ।
कड़ा हेड़ पायतऽ मेळ, फिरी पेरजे ओ मिरगा नयनी ।।

अर्थ पति कहता है "हे प्रिये तुम्हारे माथे की टिकुली मेरे कपाल से लग रही है। टिकुली निकाल डालो डिब्बी में रख दो, फिर पहन लेना हे मृग नयनी।"

तुम्हारे सिर की बेसर मेरी दाढ़ी में लग रही, बेसर निकाल डालो डिब्बी में रख दो, फिर पहन लेना हे मृगनयनी।

इसके बाद उसकी तीसरी शिकायत होती है—

तुम्हारे गले की हंसली मेरी छाती से लग रही है, अतएव हंसली निकाल डालो; खूंटी पर रख दो, फिर पहन लेना हे मृगनयनी।

तुम्हारे हाथ के बाजूबन्द मेरी पीठ में लग रहे हैं। अतएव बाजूबन्द निकाल डालो, ताक में रख दो; फिर पहन लेना हे मृग-नयनी।

और वह कहता जाता है—

तुम्हारी कमर का कदोरा मेरी कमर से लग रहा है अतएव कदोरा निकाल डालो, सिरहाने रख दो, फिर पहन लेना हे मृगनयनी।

तुम्हारे पाँवों के कड़े मेरे पाँवों में लग रहे हैं अतएव कड़े निकाल डालो, पैताने में रख लो, फिर पहन लेना हे मृगनयनी।

इसमें पति-पत्नी जितने नजदीक आते हैं गहनों को भी उतने ही नजदीक, खूंटी या ताक के बजाय सिरहाने या पैताने रखने पर राजी होते जाते हैं और यूं गीत की कड़ियाँ एक दूसरे में खो जाती हैं।



कोई भूखे मत रहना जी!

लोकगीतों में ननदोई को लेकर कभी अत्यन्त ही मधुर विनोद सँजोया गया है। देखिये, इस गीत में, ननदोई के मेहमान होकर आने पर उनका किस तरह रंगीन स्वागत किया जाता है इसका भी वर्णन सुनिये --

एक गहूं की मनऽ रोटी बणाई
ओमऽ नणंद जिमाड़ी, ओमऽ नणदई जिमाड़्या,
तीजा पोरया-पारई, चौथी साळा-हेली,
भूक्या रहेजो मती !

एक डाडा की मनऽ झोपड़ी बधाड़ी।
ओमऽ नणंद बठाड़ी, ओमऽ नणदई बठाड़्या,
आका पोर्‍या-पारई, चोथी साळा-हेली
घामऽ मरजो मती !

एक ईस की मनऽ खाट बनाड़ी।
ओपर नणद सोवाड़ी, ओपर नणदई सोवाड़्या,
तीजा पोर्‍या-पारई, चौथी साळा—हेली,
भुई मंऽ सोवजो मती !

एक पूणी की मनऽ गोदड़ी बनाड़ी।
ओखऽ नणद वढ़ाई, ओखऽ नणदई बढ़ाई,
तीजा पोर्‍या-पारई, चौथी साळा-हेली,
ठंडऽ मरजो मती !

म्हारा प्यारा नणदोई !!

अर्थ–एक गेहूं की मैंने रोटी बनाई।
उसमें ननंद को जिमाया, उसमें ननदोई को जिमाया,
उनके लड़के-बच्चों को जिमाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई भूखे मत रहना जी!

एक लकड़ी की मैंने झोंपड़ी बनाई।
उसमें ननंद को बैठाया, उसमें ननदोई को बैठाया,
उनके लड़के–बच्चों को बैठाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई धूप मत सहना जी!

एक ईस की मैंने खटिया बनाई।
उस पर ननंद को सुलाया, उस पर ननदोई को सुलाया,
उनके लड़के-बच्चों को सुलाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई जमीन पर मत सोना जी!

एक पौनी की मैंने रजाई बनाई,
उसे ननंद को उढ़ाया, उसे ननदोई को उढ़ाया,
उनके लड़के बच्चों को उढ़ाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई ठड मत सहना जी!

जी, मेरे प्यारे ननदोई!!



जब पत्नी के द्वारा पति को बनाया जाता है।

विनोद जीवन की अनिवार्य शर्त है। इस गीत में, पति-पत्नी के बीच चलने वाले एक शिष्ट विनोद की झाँकी देखिये।

बात यह होती है कि जिन दिनों पत्नी को बच्चा होनेवाला रहता है, उन्हीं दिनों उसके पति को किसी आवश्यक कार्य से दूर के गाँव जाना पड़ता है। वहाँ से लौटने पर उन्हें अपने यहाँ का वातावरण कुछ ऐसे लगता है मानो उनके यहाँ बच्चा हो चुका। अतएव वे सहज ढंग से अपनी पत्नी से पूछते हैं कि "हे प्रिय! तुमने किसे जन्म दिया है?"

इस पर जिस मजे के ढँग से उनकी पत्नी उन्हें बनाती है उसका आनन्द लीजिये।—

चतुर साहेबजी गोह्यापर आया,
तो गोह्या पर सुण्यो जंगी ढोल हो,
गोरी तुनऽ काई हो जायो ॥
आपणा गांव मंऽयाव हो मांड्यो,
ते गुण वाजऽ जंगी ढोल हो,
पियाजी मनऽ कई नो जायो ॥
चतुर साहेबजी पनघट पर आया,
पनघट पर देखी पाणी-रेल हो,
गोरी तुनऽ काई हो जायो ॥
सावन भादों को मेहुलो सो बरस्यो,
ते गुण आई पाणी-रेल हो,
पियाजी मनऽ कई नी जायो ॥

चतुर साहेबजी गांव मंऽ आया,
गांव मंऽ उड़ऽ अबीर गुलाल हो,
गरी तुनऽ काई हो जायो ।।

आपरणा गांव मंऽ माऊजी होळई सी खेल्या,
ते गुण उड़ऽ अबीर गुलाल हो,
पियाजी मनंऽ कई नी जायो ।।

चतुर साहेबजी सेरी मंऽ आया,
सेरी मंऽ आवऽ आजूं वास हो,
गोरी तुनऽ काई हो जायो ।।

आपरणी सासूजी को पेट हो दुखऽ,
ते गुण आवऽ आजूं वास हो,
पियाजी मनऽ कई नी जायो ।।

चतुर साहेबजी आंगणा मंऽ आया,
आंगणा मंऽ आवऽ सोंठ वास हो,
गोरी तुनऽ काई हो जायो ।।

अपणा भाभीजी को माथो हो दुखऽ
ते गुण आवऽ सोंठ वास हो,
पियाजी मनंऽ कई नी जायो ।।

चतुर साहेबजी कोठरी मंऽ आया,
पलग पर खेलऽ नानो बाळ हो,

हम तो हारिया, पियाजी तुम जीतिया,
बोल्या ते वचन संभाळो,
पियाजी हमनऽ लाल हो जायो ॥

अर्थ–जब उसके सयाने पति गोहे पर आये, तो उन्होंने गोहे पर जंगी ढोल की आवाज सुनी। अतएव उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा कि हे प्रिये, तुमने किसे जन्म दिया है ? पुत्र को, या कन्या को ?

इस पर पत्नी बोली, हे प्रिय, आप कैसी बात कर रहे हैं, अपने गाँव में विवाह हो रहा है, इसी लिये आपने जंगी ढोल की आवाज सुनी। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।
जब उसके सयाने पति पनघट पर आये, तो उन्होंने पनघट तक पानी की लाइन बहते हुए देखी थी अतएव पूछा, हे प्रिये, तुमने किसे जन्म दिया है ?

अत्यन्त ही सहज ढंग से वह बोली, हे प्रिय, सावन-भादव की तरह आज कुछ पानी-सा बरस गया था, इसी से वह बह निकला होगा। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।
उसके चतुर पति जब गाँव में आये, तो उन्होंने गाँव में अबीर और गुलाल उड़ते हुए देखा था, अतएव पूछा कि हे प्रिये, तुमने किसे जन्म दिया है ?

तनिक मुस्कराकर वह बोली, आज अपने गाँव वालों के मन में कुछ होली-सी खेलने की आ गई थी, इसी लिये अबीर और गुलाल उड़ रहे हैं। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।

उसके चतुर पति जब गली में आये थे तो उन्हें गली में अजवाइन की गन्ध आई थी;

अतएव पूछा कि हे प्रिये तुमने किसे जन्म दिया है ?
वह बोली, मेरी सास के पेट में आज तनिक दर्द-सा था, इसी लिये आपको अजवाइन की गन्ध आई होगी। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।

उसके चतुर पति जब आंगन में आये, तो आंगन में उन्हें सोंठ की गन्ध आई थी। अतएव पूछा, हे प्रिये ! सच सच बताओ तुमने किसे जन्म दिया है ?
वह बोली, अपनी भाभी के सिर में आज कुछ दर्द-सा हो रहा था, इसी लिये आपको सोंठ की गन्ध आई होगी। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।

अपनी शंकाओं का इतना स्पष्ट समाधान पाकर जब उसके पति ने कमरे में पाँव रखा, तो देखा कि वहाँ पलंग पर एक नन्हा-सा बच्चा खेल रहा था !

अतएव हर्षातिरेक से चिल्लाते हुए वे बोले—"हे मेरी गौरवर्णा प्रिये ! तुमने मुझे व्यर्थ ही बनाया। देखो, तुम मुझ से झूठ बोली हो !"

इस पर, खिलखिलाकर हंसते हुए पत्नी बोली—"हे प्रिय ! हमारी हार, किन्तु आपकी जीत हुई है। लेकिन अपने दिये वचन निभाइयेगा।

आपने कहा था कि यदि मुझे कन्या हुई तो आप नाराज होंगे। और यदि पुत्र हुआ, तो उपहारों से ढंक देंगे। सो लाइये उपहार।

सुनिये, हमने पुत्र को जन्म दिया है !"
और दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े !!!

लोरी एवम् बच्चों के गीत

हमारे अलंकार-शास्त्रों में नौ रसों का उल्लेख है, पर लोरियों में जो रस प्राप्त होता है वह शास्त्रोक्त रसों के अंतर्गत नहीं है। अभी अभी जोती हुई जमीन से जो गंध निकलती है या शिशु के नवनीत कोमल देह से, जो स्नेह को उबाल देनेलाली गंध है, उसे फूल, चंदन, गुलालजल, इत्र या धूप की गंध के साथ, एक श्रेणी में रखा नहीं जा सकता। सभी सुगंधों के मुकाबले में, उसमें एक अपूर्व आदिमता है उसी प्रकार लोरियो में एक आदिम सुकुमारिता है। जिसकी मधुरता को बाल्य-रस नाम दिया जा सकता है।

—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर



चिड़िया का विवाह !

यह एक बच्चों का लोरी-गीत है। ये गीत छोटे-छोटे बच्चों के समझने लायक तुक-बन्दियों में लिखे गये हैं। बच्चों को खेलने और समझाने के लिये हमारे पूर्वजों ने कृत्रिम खिलौनों की अपेक्षा सजीव पक्षियों का ही उपयोग करना अधिक उचित समझा। "चंचल, सुन्दर पक्षियों" और "बच्चो" में बहुत दूर तक साम्य भी रहा है।

"चुप हो जा" और "सो जा" की टेक को लेकर ये गीत शुरू होते, और अनेकों बार दुहराये जाकर इसी टेक में लय हो जाते हैं। इनमें से कुछ का आनन्द आप भी लीजिये। देखिये, एक गीत है—

हात रे भाई रे !
नाना की मांय पाणी खऽ गई, घर मऽ कुतरा कोंडी गई।
कुतरा भूकसे होळई पर, नानो म्हारो सोवसे झळोई पर।
आवो चिड़ीबाई दौड़ करी, नानो म्हारो सोवसे सौड़ करी।
आवो चिड़ीबाई परात मऽ, नानो म्हारो जासे बरात मंऽ।
आवो चिड़ीबाई करू थारो याव, कथील को मूंदड़ो
न जुरंग को हार
बाजरा को खीचड़ो नऽ मसूर की दाळ, आवो चिड़ीबाई
करूं थारो याव।
हात रे भाई रे !

अर्थ—हे बच्चे! चुप हो जा, और सो जा !
बच्चे की माँ पानी को गई है,
और घर में कुत्ते बन्द कर गई है।

कुत्ते होली पर भूकेंगे,
और मेरा बच्चा झोली में सोवेगा।

ओ चिड़िया बहन! दौड़कर आ जावो, मेरा बच्चा ओढ़कर सोवेगा।

ओ चिड़िया बहन! परात (थाली) में आ जावो,
मेरा बच्चा बारात में जायेगा।

आओ चिड़िया बहन! मैं तुम्हारा विवाह कर दूँ,
कथील अंगूठी और जुरुंग का हार बनवा दूँगी।

और बाजरे की खिचड़ी के साथ मसूर की दाल भी दूँगी,
हे चिड़िया बहन! आओ, मैं तुम्हारा विवाह कर दूँगी।
हे बच्चे! चुप हो जा, और सो जा!!



बच्चा राजा

बच्चा अपने मन का राजा होता है। इस गीत में, एक ऐसे ही राजा बच्चे की कहानी सुनिये—

नानो म्हारो, नानो म्हारो करती थी, घींव घड़ा मऽ भरती थी।
घीव का घड़ा न कोरा छे, नाना का मामाजी गोरा छे।
नानो म्हारो जीमऽ तवऽ कसो करां, अम्बा रोटी रसऽ करां।
रस मंऽ पड़ी गयो काकरियो, नाना का मामाजी ठाकरियो।
ठाठ करऽ, ठकराई करऽ, नानो म्हारो बठी नऽ राज कर।
राज करी नंऽ परवारऽ नी, नाना की मांय घवाड़ऽ नी।
हात रे भाई रे!

अर्थ—माँ, मेरा बच्चा-मेरा बच्चा करती जाती थी,
और घड़े में घी भरती जाती थी।
घी का घड़ा कोरा था,
और बच्चे के मामाजी गोरे थे।
जब मेरा बच्चा भोजन करेगा, तब मैं क्या करूँगी?
रोटी के साथ आम का मीठा रस बनाऊँगी।
रस में कंकर गिर गया,
और बच्चे के मामाजी ठाकुर बन गये।
वे ठाठ करेंगे, तभी ठकुराई करेंगे,
लेकिन मेरा बच्चा तो घर बैठे राज्य करेगा।
वह राज्य-कार्य से निवृत्त हुआ नहीं,
कि माँ ने दूध पिलाया नहीं!

हँसी और आंसू

यह गीत बच्चों के स्वभाव से सम्बन्धित है। बच्चों के लिये रोना और हँसना तो चुटकी की बात है। जरा कोई ढंग से बोल दिया, कि हँस देंगे। किन्तु जहाँ किसी की आँखों में टेढ़ दिखी, कि रोते देर न लगेगी। उनकी हँसी तो सुन्दर होती ही है, रोना भी कम सुन्दर नहीं होता। एक, बच्चों के खेल बड़े मजेदार होते हैं। देखिये—

नाना म्हारा का ठुमक्या पांय,
ठुमुक ठुमुक भाई वाड़ी मऽ जाय।
वाड़ी मऽ का वनफळ तोड़ी तोड़ी खाय,
एतरा मऽ आई गई माळेण मांय।
माळेण माय नऽ छोड़ई लिया भगा न भूल,
रड़ऽ कुढ़ऽ रे म्हारो नानो भाई।
रस्ता मऽ मिली गई भूआ मांय,
क्यों रड़ऽ रे म्हारा नाना भाई।
नाना भाई नऽ तोड़ो लिया कमळ का फूल,
माळेण मांय नऽ छाड़ई लिया भगा न भूल।
ल वो, माळेण मांय, थारा कमळ का फूल,
दऽ म्हारा नाना का भगा नऽ भूल।

अर्थ—मेरे बच्चे के नन्हें-नन्हे पाँव हैं।
और वह अपने नन्हें-नन्हें पाँवों से बाड़ी में जाता है।
और बाड़ी में के वनफलों को तोड़-तोड़कर खाता है।
इतने में मालन माँ आ जाती है।

और मालन माँ उसके झगा और टोपी छीन लेती है।
और मेरा नन्हा बच्चा रोने कलपने लगता है।
रास्ते में उसे भूआ माँ मिल जाती है।
और पूछती है कि हे मेरे बच्चे! तू क्यों रो रहा है?
लेकिन मेरा बच्चा क्या जवाब दे!
मेरे बच्चे ने तो सिर्फ कमल के फूल तोड़े हैं।
लेकिन मालन माँ ने तो उसका झगा और झूल ही छीन लिया है।

ओ मालन माँ! तू अपने कमल के फूल वापिस ले ले,
और मेरे बच्चे के झगा और झूल लौटा दे!



सांझ, फूल और बच्चे

कुंआर के महीने जब बादल हटने लगते, संध्याएँ रंगीन हो उतरती, और खेतों-खलिहानों तक की बागुड़ों पर फूल खिल उ हैं तब फूलों की तरह सुकुमार बच्चियों के द्वारा, निमाड़ में "सां फूली" का व्रत मनाया जाता है।

इसमें श्राद्ध पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक, बच्चियों द्वारा, घर की दीवार के एक हिस्से को लीपकर, उस पर, प्रकृति सहज उपादान गोबर से, संजादेवी और चांद-सूर्य आदि की विभि आकृतियाँ बनाई जाती हैं। जैसे जैसे तिथियाँ बढ़ती जाती हैं, वै वैसे इन आकृतियों की संख्या बढ़ती जाती है, और यूं अमावस के दिन ये भित्तिचित्र सम्पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं। प्रतिदिन सन्ध के समय फूलों की रंग बिरंगी पंखुड़ियों से इन्हें सजाया जाता संवारा जाता हैं, और सुकोमल पंखुड़ियों से ही इनकी पूजा-अर्च भी की जाती है।

सन्ध्या के उतरते झुटपुटे में जब इन पंखुडियों से सजी औ गोबर से बनी आकृतियों के सन्मुख, नन्हीं बालिकाओं के द्वारा दीप संजो दिये जाते हैं तो ऐसे प्रतीत होता है मानो बच्चों वे स्नेह भरे अनुरोध से रीझकर संजा स्वयम् रंग-बिरंगी किरणों क ओढ़नी ओढ़, सुकोमल पंखुड़ियों पर चरण धर, घर के आँगन उतर आई हो, और तब "साँझ, फूल और बच्चों" का यह खेल तब तक चलता रहता है जब तक घना अन्धकार उतर कर उनमें अपने अपने घर जाने की याद न जगा दे।

और ऐसे में गीत चलते हैं—

संजा फूली आगणऽ माय,
कि पूजणऽ चलो जी।
चांद सूरजऽ दुई भाई,
कि मीलणऽ चलोजी।।
कि जिनका हाथऽ सोन्ना की तलवार,
कि धोळा घोड़ा पर असवार,
कि जिनका माथऽ पचरंग पाग,
कि जिनका गळा मऽ सतरंग हार।
संजा फूली आंगणऽ माय,
कि पूजणऽ चलोजी।
चांद सूरज दुई भाई,
कि मीलणऽ चलोजी।।

अर्थ-सन्ध्या आँगन में उतर आई है,
आओ उसका पूजन करें।
चाँद और सूरज दोनों भाई खड़े हैं,
आओ उनसे मिलने चलें।।
उनके हाथ में (किरणों-रूपी) सोने की तलवार है,
और वे (प्रकाशरूपी) सफेद घोड़े पर सवार हैं,
उनके सिर पर पचरंगी पगड़ी बंधी है,
और वे अपने गले में इन्द्रधनुषी सतरंगी हार लिये हैं।
संजा आँगन में उतर आई है,
आओ उसका पूजन करें।
चाँद और सूर्य दोनों भाई खड़े हैं,
आओ उनसे मिलने चलें।।

दूसरे गीत में सन्ध्या की एक कन्या के रूप में कल्पना करते हुए उसे अपने ससुराल जाने की याद दिलाई जाती है।

कैसी मनोरम कल्पना है सन्ध्या के आँगन-रूपी मैके से रात्रि-रूपी ससुराज जाने की! गीत है—

तुम तो जाओ संजा बेण सासरऽ।
तुम्हारा सासरऽ सी,
हत्थी भी आया, घोड़ा भी आया,
पालकी भी आई, म्याना भी आया,
तुम तो जाओ संजा बेण सासरऽ।

इस पर सन्ध्या कहती है—

हत्थी सामनऽ उभाड़ो घोड़ा घुड़साल बंधाड़ो,
पालकी छज्जा उतारो, म्याना धाबा घराड़ो,
हऊँ तो नहीं जाऊँ दादाजी सासरऽ।

अर्थ-हे संजा बहन! तुम अपने ससुराल जाओ।

देखो, तुम्हारी ससुराल से,
हाथी भी आया है, और घोड़ा भी आया है,
पालकी भी आई है, और म्याना भी आया है,
अतएव हे संजा बहन! तुम अपने ससुराल जाओ।

इस पर सन्ध्या कहती है—

हे पिताजी! हाथी को सामने खड़ा रहने दो और घोड़े को घुड़साल में बंधवा दो,

पालकी को छज्जे उतारो, और म्याने को धाबे पर रखवा दो,
हम तो अपने ससुराल नहीं जायेंगी।

लेकिन कुछ हो, सन्ध्या के लाख मना करने पर भी उसे अपनी ससुराल जाना ही होता है, और यूं रात्रि के प्रगाढ़ अंधकार में गीत की कड़ियाँ खो जाती हैं!

नखत !

संजा की समाप्ति के साथ ही "नवरात्रि" के पूरे नौ दिनों तक चलने वाला "नखत" का व्रत आता है। यह "सांजा फूली" की तरह सुकोमल बच्चियों का स्वप्निल त्यौहार नहीं, वरन् भविष्य में अच्छा पति मिलने, एवम् सौभाग्य वाली होने की कामना से ओतप्रोत कुवांरी कन्याओं का व्रत है। शंकर-पार्वती की पूजा के रूप में इसे मान्यता दी गई है।

इसमें प्रतिपदा के दिन, बालिकाओं द्वारा, हाथ-सनी मिट्टी से दो मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। मूर्तियाँ क्या होती हैं, इसमें मिट्टी के एक गोले को मनुष्य की आकृति का स्वरूप दे दिया जाता है और उसमें कौड़ियाँ रख कर दो चमकीली आँखें, तथा मिट्टी को कहीं उभार कर और कहीं उसमें गढ़े बनाकर, नाक-कान और मुँह बना दिये जाते हैं।

इसके बाद कुवांर की हलकी मधुर ठण्ड के बीच, नित्य बड़ी सुबह उठकर, बालिकाएँ दूर-सुदूर से रंग-बिरंगे फूल चुनकर लाती हैं और गीत की कड़ियों के साथ उन्हें गूंथकर उनसे नखत की पूजा की जाती है। इन गीतों में फूलों के नाम के साथ, रूप-रंग और विशेषताओं का भी अत्यन्त ही मनोरम वर्णन पिरोया होता है–

नकल्या ओ कुई, नकल्या ओ कुई,
नकल्या खेली खेली आई छे,
बाई छे, बाई फूल को हार छे।
दऽओ, जोगेण, नकल्या दऽ, नकल्या दऽ,
आट गई, अटेलो लाई,
पाट गई पटेलो लाई,

दऽओ, जोगेण, नकल्या दऽ, नकल्या दऽ।
नकल्या ओ कुई, नकल्या ओ कुई।

अर्थ—नन्हें नन्हें फूल,
मैं फूल खेल कर आ रही हूँ।
हे बहन! मैं फूलों के हार खेल कर आ रही हूँ।
हे योगिन बहिन! तू भी मुझे फूल दे, फूल दे।
मैं इस पार गई, अमुक फूल लाई,
उस पार गई, अमुक फूल लाई।
हे योगिन बहिन। तू भी मुझे फूल दे, फूल दे।
नन्हें-नन्हें फूल,
मै फूल खेलकर आ रही हूँ।



ये घोड़े तो मेरे पिताजी के हैं

यह एक बच्चों का गीत है। इसमें, एक भाई के द्वारा अपनी बहिन को लेने जाने का अत्यन्त ही स्नेहिल चित्र संजोया गया है—

नानो अम्बो नऽ गढ़ झूमको,
कुण भाई बेड़वा जाय रे।
असा नानाजी भाई पातळा,
घोड़िला लिया हजार रे।
गया ते अमुक गांव का घोयरऽ,
म्हांका लोग भाग्या जाय रे।
मत भागो, मत भागो, लोग न होणऽ,
हउ छे अमुक बैण को बीरो रे।
निकळी मोठी बैण भायरऽ
बीराजी खऽ लेवो पहेचाण रे।
ई घोड़िलो तो म्हारा बाप को,
बठणऽ वाळो माड़ी-जायो रे।

अर्थ—छोटा-सा झूमरदार आम का वृक्ष है
उसे कौन भाई बेडने के लिये जायेगा।
ऐसे ही मेरे नन्हें-से छोटे भाई हैं,
उन्होंने हजारों घोड़े लिये और अमुक गाँव के गोहे पर जा पहुँचे
उन्हें देखते ही गाँव के लोग भागने लगे।
उन्होंने कहा—हे भाइयो! मत भागो, मत भागो,

देखो, मैं तो अमुक बहिन का भाई हूँ।
हे बड़ी बहन ! बाहर निकलो,
और अपने भाई को पहिचान लो।
और तब बहिन ने बाहर आकर कहा—
अरे ! ये घोड़े तो मेरे पिताजी के हैं,
और उस पर बैठने वाला मेरा सहोदर भाई है !!



हे चांद ! चबेना दे !

न जाने क्यों, बच्चे चाँद से गहरी आत्मीयता-सी महसूस करते आये हैं। यही क्यों, वे तो चाँद से "चन्दा-मामा" और "चन्दा-बाबा" का रिश्ता भी निबाहते आये हैं।

भले ही वैज्ञानिकों के लिये चाँद खोज का विषय हो, लेकिन बच्चों के लिये तो वह खरगोश का निवास-स्थान रहा है। कुछ उसमें खड़ाऊँ का निशान देखते हैं, और कुछ अपनी ही तरह शरारती हिरन की उछल-कूद। बच्चा कितना ही रोता क्यों न हो, आप उसे चाँद दिखा दीजिये वह चुप हो जावेगा। कहते हैं एक बार बाल-कृष्ण चाँद को पाने के लिये कुछ इस कदर मचल उठे थे कि जब तक उन्हें थाली के पानी में चाँद पकड़कर नहीं दिखा दिया गया, तब तक उन्होंने चैन नहीं ली।

यही क्यों, निमाड़ के एक गीत में तो चाँद से भैंस बंधवाने की कल्पना की गई है। गीत के बोल हैं—

"आव रे चांद, भैसी बान्ध।"
हे चाँद आओ और हमारी भैंस बाँध जाओ।

दूसरे गीत में चाँद से चबेना देने को कहा गया है—

"चन्दा बाबा चन्दी द
घी मऽ रोटी बोळई द।
नाना भाई ख भावऽ नी,
न झुमका लाड़ी आवऽ नी।"

अर्थ—हे चाँद चबेना दे,
और घी में रोटी डुबोकर दे।

नन्हें भाई को वह भायेगी नहीं,
और उसकी लटलूम वधू आयेगी नहीं !

जैसे-जैसे बच्चे की उमर बढ़ती जाती है, इन गीतों का स्वरूप बदलता जाता है। लेकिन सब मिलाकर ये गीत बच्चों की ही तरह शरारती, चंचल, ऊधमी, और बिना अर्थ वाले होते हैं।

शरत् की चाँदनी रात में, विजयादशमी से पूर्णिमा तक, बच्चे जब टोलियाँ बनाकर कुछ गीत की तुकबन्दियों के साथ, उछल-कूद करते, घर--घर से भिक्षा माँगते हैं, तो कुछ ऐसे लगता है मानो पहाड़ी झरने की तरह छन्दों के उतार-चढ़ाव पर जिन्दगी लहरा रही हो, उस समय का एक गीत है—

"नद्दी नद्दी दिया बळऽ रे, काई जनावर जाय,
हरणी को पिलको ढोर चरावण जाय।
ला ओ माय बकेड़ी।"

अर्थ—नदी के किनारे-किनारे यह कौन-सा जानवर जा रहा है।
ये किसकी आँखें चमक रही हैं।
अरे, यह तो हरिन का बच्चा मवेशियाँ चराने जा रहा है।
हे माँ! भिक्षा दे।

दूसरा गीत है—

"नानी-सी गाय गटर गैंगणो, सौ पूळा खाय,
माता जमुना को पाणी पे, न्हार सामऽ जाय,
ला जो माय बकेड़ी।"

अर्थ—छोटी-सी गाय सुहावनी है। वह सौ पिंडी घास और माँ यमुना

का पानी पीती है । इसी लिये तो शेर से मुकाबला लेती है।
हे माँ! भिक्षा दे।

तीसरा गीत है—

"नानी–सी मांजरी माळवऽ गई, माळवऽ सी लाई माटी,
माटी का बणाया हत्थी, हत्थी चलऽ आणा बाणा,
लाओ माय टुलेक दाणा ।"

अर्थ—नन्हीं-सी बिल्ली मालवे गई। मालवे से मिट्टी लाई। मिट्टी
के हाथी बनाये। हाथी टेढ़े-तिरछे चलते ही हैं।
हे माँ! तू तो सीधे सीधे एकाध टूली अनाज दे दे।



रक्षा-बन्धन

सावन का महीना बहिन के मन में अपने भाई की याद लिये आता है। आकाश में तैरते बादलों की तरह उसकी आँखों में अपने मैके की याद तैरने लगती है। लाख प्रयत्न करने पर किसी भी काम में उसका मन लग नहीं पाता। तनिक-सी आहट से वह चौंक-सी जाती और अनजाने ही बार बार द्वार तक जाकर अपने भाई के आने की प्रतीक्षा करने लगती है।

जिस ससुराल से आत्मसात् होने में उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, आज उसी ससुराल में सास को देखकर उसे माँ की याद सताने लगती है। माँ—जिसके स्नेहिल आँचल की छाया तले वह बढ़ी-पली, और जिसने अपनी साँसों से बाँधे रखकर उसकी सार-संभाल की माँ—जिसके बिना वह बचपन मे एक क्षण भी अलग नहीं रह पाती थी। आज उसी माँ से मिले उसे कितने दिन हो गये! उसका मन एक क्षण में उड़ कर अपनी माँ के पास पहुँच जाता है और तभी उसे वट-वृक्ष की तरह अपने पिता की याद हो आती है, और वह सोचती है-वे आज भी अपनी बैठक में बैठ उसकी याद कर रहे होंगे। इसी बीच, आँगन में खेलते बच्चों को देखकर, उसका मन अपने भाई-बहनों की याद में उलझ जाता है-भाई, कि जो उसके बचपन के सब से बड़े साथी रहे हैं। खेल-खेल में वे कितनी बार लड़े-झगड़े हैं, लेकिन एक दूसरे के बिना जिन्होंने कभी खाना नहीं खाया। इस तरह की अनेकों स्मृतियों में तैरते मानो समय-रूपी दिन के दानों को गिन-गिनकर वह रक्षा-बन्धन के दिन को और भी नजदीक खींच लाना चाहती है।

इधर भाई के मन में भी अपनी बहिन की याद जगती है और छोटे-छोटे बच्चे झूले झूलते हुए निम्न-लिखित गीत की

पंक्तियाँ गा-गाकर उस याद को और भी हरी कर जाते है—

लीम म लिमोळई लागी, श्रावरण महिनो आयो जी।
हमारा तो मोठा भाई तुम खऽ नीद कसी आवऽ जी॥
तुम्हारी तो छोटी बहरण सासरिया मऽ झूरऽ जी।
झूरऽ तेखऽ झूरऽ देश्रो हमनी झूरनऽ देवां जी॥

अर्थ—नीम के वृक्ष पर निम्बोली पक गई सावन महीना आ गया है।
ओ मेरे बड़े भाई ! इन दिनों भी तुम्हें नींद कैसे आ रही हे।
देखो, तुम्हारी छोटी बहिन ससुराल में झुर रही हे।"
इस पर भाई कहता है—

"जो झुर रही उन्हें झुरने दो।
लेकिन हम अपनी बहिन अब नही झुरने देगे।"

उसके बाद जो व्यक्ति अपनी बहिन को लिवाने जाता है उसे किस तरह घर भर के व्यक्ति सारी सुविधाएँ और अपना प्यार प्रदान करते हैं इसका वर्णन भी सुनिये। इससे निमाड़ और गुजरात के सम्बन्धों का भी पता चलता है। गीत के बोल हैं—

"कुरण भाई जासे चाकरी कुरण भाई जासे गढ़ रे गुजरात ?
मोठा भाई जासे चाकरी छोटा भाई जासे गढ़ रे गुजरात !
कुरण भाई की घोड़ी खऽ घूंघरू, कुण भाई की घोड़ी खऽ
जड़यो रे जड़ाव
मोठा भाई की घोड़ी खऽ घूंघरू, छोटा भाई की घोड़ी
खऽ जड़यो रे जड़ाव

कुण भाई लावसे चूनरी, कुण भाई लावसे दक्षिणारो चीर
एक भाई लावसे चूनरी, दूसरो भाई लावसे दक्षिणारो चीर
श्रावण आयो जो ॥"

अर्थ—कौन भाई नौकरी पर जायेगा।
और कौन भाई गुजरात के गढ़ से अपनी बहिन को लिवाने ?
बड़े भाई नौकरी पर जायेंगे
और छोटे भाई गुजरात के गढ़ से अपनी बहिन को लिवाने।
किस भाई की घोड़ी को घुंवरू बाँधे जायें ?
और किस भाई की घोड़ी को रत्न जड़ाव से सिंगारा जाये ?
बड़े भाई की घोड़ी को घूंवरा बाँधा जाये,
और छोटे भाई की घोड़ी को रत्न जड़ाव से सिंगारा जाये।
कौन भाई चूनर लायेगा और कौन भाई दक्षिणा का चीर
एक भाई चूनर ले आयेगा
और दूसरा भाई दक्षिणा का चीर !

इसके बाद जो भाई अपनी बहन को लिवाने जाता है, उसकी प्रशंसा में भी मानो गीत की कड़ियाँ आगे बढ़ती हैं—

दूरदूर की म्हारी मोठी बईण तुखऽ लेणऽ खऽ कुण जासे,
जासे हो म्हारो नानो भाई, घोड़ी कुदावतो लावसे।

अर्थ—ओ दूर देश में रहने वाली मेरी बड़ी बहिन !
तुझे लेने के लिये कौन जायेगा ?
तुझे लेने के लिये तो मेरे छोटे भाई जायेंगे,
और घोडी दौडाते हुए तुझे ले आयेंगे।

आगे चलकर महज घोड़े की टाप की आवाज सुनकर बहिन पहिचान लेती है कि मेरे भाई आ गए। और पैंजनियों की ध्वनि सुनकर भाई पहिचान लेते हैं कि मेरी बहिन आ गई। इसका वर्णन भी सुनिये—

घोड़ा का टापुर वाज्या, बइण कहे कि म्हारो भाई आयो,
पांयण पीजण को ठुमको वाज्यो, भाई कहे कि म्हारी
बइण आई ।

अर्थ—घोड़े की टापों की आवाज आई, और बहिन ने कहा कि मेरे
भाई आ गए ।
पाँव की पैजनियों की ठुमुक सुनाई दी, और भाई ने समझ लिया
कि मेरी बहिन आ गई है ।

अन्त में एक गीत में रक्षा-बंधन के उपलक्ष में भाई के द्वारा बहिन को दी जाने वाली भेंट का वर्णन है। इसमें भाई अपनी बहिन को रुपया पैसा नहीं देता वरन् खेतिहर देश की संस्कृति के अनुकूल गाय की भेंट देता है, जिसके बछड़े बहिन के खेत में हल जोतते हैं और यों बहिन का घर धन-धान्य से समृद्ध हो उठता है।

पहेली राखी म्हारा नाना भाई खऽ बांधूं,
नाना भाई नऽ दीनी लाल गाय,
लाल गाय का जाया घोरी हळ हाकऽ,
दूसरी राखी म्हारा मोठा भाई खऽ बांधूं,
मोठा भाई नऽ दीनी श्याम गाय,
श्याम गाय घोरी हळ हांकऽ ।

अर्थ—पहिले राखी मैं अपने छोटे भाई को बाँधूँगी ।
छोटे भाई ने लाल गाय दी है ।
लाल गाय के बछड़े मेरे खेत में हल जोतेंगे ।
दूसरी राखी मैं अपने बड़े भाई को बाँधूँगी ।
बड़े भाई ने श्याम गाय दी है ।
श्याम गाय के बछड़े मेरे खेत मे हल जोतेंगे ।

व्रत उत्सव के

गीत

लोक-साहित्य में व्यक्तिगत सम्बन्ध गाये जाते हैं, पर व्यक्ति तब तक नहीं गाया जाता जब तक कि वह लोक-मानस की, किसी उद्दात कल्पना का, मूर्तिकार न बन चुका हो।

शिव, राम, कृष्ण, पार्वती, सीता, कौशल्या, यशोदा या देवकी जैसे चरित्र भी लोक-साहित्य के चौरस मैदान में उतरते ही, अपनी गौरव-गरिमा भूल जाते हैं और लोक का बाना धारण करके, लोक में ही मिल जाते हैं। यहाँ तक की लोक का सुख-दुःख भी वे अपने ऊपर ओढ़ने लगते हैं। इसी से लोक-साहित्य की देव-सृष्टि भी, अमानवीय और अपार्थिव नहीं लगती।

—श्री विद्यानिवास मिश्र



जिसकी लहरों से मेरा शरीर निर्मल होता है।

गाँव से जब भी कोई व्यक्ति तीर्थ-यात्रा पर जाता है, तो वहाँ से उसे लौटने तक उसके घर "गंगा के गीत" गाये जाते हैं। उधर यात्री के कदम मंज़िल की ओर बढ़ते है, और इधर गीत के स्वर ऊँचे और ऊँचे उठकर उसकी यात्रा में योगदान देते आये हैं।

उस स्नेह के लिये क्या कहा जाये जो घर रह कर भी जाने वाले की याद मे गाता-गुनगुनाता आया है। कल्पना कीजिये उस क्षण की भी—जब यात्री अपने घर और प्रान्त से दूर सुदूर के किसी स्थान पर विश्राम करता होगा, उसमें अपने घर की याद जगती होगी, और तब उसे यह जानकर कितना सुख मिलता होगा कि याद के इन्हीं क्षणों में उसके घर, घरके आँगन में, उसी की याद में गंगा के गीत चल रहे होंगे। एक क्षण वह अपने पारिवारिक जनों के बीच खो जाता होगा। उधर उन्हीं क्षणों की याद में गीत के स्वर और भी तेज होते होंगे, और यूं यात्री के पाँव मज़बूती से आगे और आगे बढ़ते जाते होंगे।

मैं जब इन गीतो को सुनता हूँ तो आत्म-विभोर हो जाता हूँ, क्योंकि गंगा के इन गीतों में गंगा ही की तरह "मानवता का समुद्र" लहरा रहा है।

इसी तरह का एक गीत सुनिये। गीत की विशेषता है लहरों की तरह तरंगायमान उसकी धुन—

ओ देवी गंगा,
वहे हो सुरगा,
थारी झबरऽ
म्हारो निरमळ अगाऽ
ओ देवी गंगा————

गंगा की लहरऽ खऽ
ढाको रे कापऽ
आई मिलऽ रे म्हारो
समरथऽ बापऽ
ओ देवी गंगा———————

वहे हो सुरंगा——————

गगा की लहरऽ खऽ
ढाको रे साड़ी
आई मिलऽ रे म्हारो
समरथऽ माड़ी
ओ देवी गंगा——————

वहे ओ सुरंगा——————

गंगा की लहरऽ खऽ
ढाको रे ताका
आई मिलऽ रे म्हारा
समरथऽ काका
ओ देवी गंगा———————

वहे हो सुरंगा
थारी झबरऽ
म्हारो निरमळ अंगाऽ——
ओ देवी गगा———————

वहे हो सुरंगा-——————

अर्थ–हे देवी गंगा तुम बहुत ही सुरम्य होकर बह रही है।
तुम्हारी हिलोरों से मेरा शरीर निर्मल होता है
हे भाई गंगा की लहरों को वस्त्रों से ढँको
उसके प्रताप से मेरे समर्थ पिता आकर मिलेंगे
हे देवी गंगा तुम बहुत ही सुरम्य होकर बह रही हो।
हे भाई गंगा की लहरों को साड़ी से ढंको,
उसके प्रताप से मेरी समर्थ माँ आकर मिलेंगी।
हे देवी गंगा तुम बहुत सुरम्य होकर बह रही हो।
हे भाई गंगा की लहरों को ताके से ढंको,
उसके प्रताप से मेरे समर्थ काका आकर मिलेंगे।
हे देवी गंगा तुम बहुत ही सुरम्य होकर बह रही हो।
तुम्हारी हिलोरों से मेरा शरीर निर्मल होता है !!!



झारी में का गंगाजल झलक रहा है

अपनी लम्बी तीर्थ-यात्रा के बाद यात्री जब घर लौटकर आता है तो सारे परिवार में आनंद और उल्लास की एक लहर छा जाती है और बड़े ही उमंग व उत्साह से उसका स्वागत किया जाता है। सबसे पहिले उसे सार्वजनिक श्रद्धा के केन्द्र एक मन्दिर में ठहराया जाता है, और तब सामूहिक रूप से उससे मिलकर, उसे गाते-बजाते हुए अत्यन्त ही समारोहपूर्वक घर लिवा लाते हैं। सबकी ओर से उसे कुछ न कुछ भेंट दी जाती है, और उसके चरण स्पर्श करने में गौरव अनुभव किया जाता है। उसने अपनी इन्हीं नंगी पगथलियों से हिमालय और गंगा का स्पर्श किया होगा इस कल्पना में कितना सुख है।

उस समय गाये जाने वाले एक गीत के बोल हैं—

थारी सांवरी सुरत मुरझाय रे,
म्हारा तीरथवासी!
झारी मऽ को गगाजळ झळक रह्यो।
जळ झळक रह्यो, हिवड़ो हरख रह्यो ॥ १ ॥
थारा कांधा की कावड़ झोला खाय रे,
म्हारा तीरथवासी!
झारी मंऽ को गगाजळ झळक रह्यो ॥ २ ॥
थारी पतली कमर लचकाय रे,
म्हारा तीरथवासी!
झारी मंऽ को गगाजळ झळक रह्यो ॥ ३ ॥
जवऽ हो तीरथवासी पनघट पर आया,

पनघट की पनिहारी लोभाय हो,
झारी मऽ को गंगाजळ झळक रह्यो ॥ ४ ॥

जवऽ हो तीरथवासी गांव मंऽ आया,
गांव का लोग हरखाय हो,
म्हारा तीरथवासी !
झारो मंऽ को गंगाजळ झळक रह्यो।
जळ झळक रह्यो, हिवड़ो हरख रह्यो ॥ ५ ॥

अर्थ–तुम्हारी साँवरी सूरत मुरझा रही है, ओ मेरे तीरथवासी
झारी में का गंगाजल झलक रहा है ॥
गंगाजल झलक रहा है और मेरा मन हरष रहा है।
तुम्हारे काँधे की कावड़ झोले खा रही है
ओ मेरे तीरथवासी ! झारी में का गंगाजल झलक रहा है।
तुम्हारी पतली कमर लचक खा रही है
ओ मेरे तीरथवासी ! झारी में का गंगाजल झलक रहा है।
जब तुम पनघट पर आये, ओ तीरथवासी !
तो पनघट की स्त्रियाँ मुग्ध रह गयीं।
झारी में का गंगाजल झलक रहा है।
जब तुम गाँव में आये, ओ तीरथवासी !
तो गाँव के लोग हर्षित हो रहे है।
झारी में का गंगाजल झलक रहा है !
गंगाजल झलक रहा है, और मेरा मन हरष रहा है।



जो हर्षित होते हुए आगे बढ़ रहा है।

जब कोई यात्री तीर्थ जाता है तो उसकी यात्रा मंगलप्रद हो इसलिये प्रतिदिन उसके द्वार पर पानी छिंटका जाता है, चौक पूरे जाते है और फूल बिछाये जाते हैं। ताकि उसके मार्ग में मिलने वाले शूल भी फूल हो उठें। और ऐसे में उसके घर के आँगन में चलने वाली गीत की कड़ियाँ भी मानो आशीर्वाद बनकर, उसे आगे बढ़ने का बल प्रदान करती आई हैं।

देखिये। इस गीत में लक्ष्य की ओर आगे और आगे बढ़ने वाले यात्री का कैसा मनोरम चित्र है।

"गंगा की वाटऽ को चलणो रे रामा, आड़ा छे ताड़ऽ का
झाड़। गगा माता।
पापी न तोड़ी खोळऽ भर्या रे रामा, धरमो चढावतो
जाय। गगा माता।
पापी का पगल्या पछा पड़ऽ रे रामा, धरमी हरकतो
जाय। गगा माता।
गगा की वाटऽ को चलणो रे रामा, आड़ा छे ताड़ऽ का
झाड़। गंगा माता।"

अर्थ—गंगा की राह का चलना बड़ा कठिन है।
वहाँ पर ताड़ के झाड़ रास्ता रोके खड़े हैं। हे गंगा माता!
पापी फूलों को समेटता जा रहा है
और धर्मात्मा उन्हें चढ़ाता जा रहा है। हे गंगा माता!
गंगा की राह का चलना बड़ा कठिन है।

अब तुम घर आ जाओ, हे तीर्थवासी

ज्यों-ज्यों यात्री को तीर्थ-यात्रा पर गये समय बढ़ता जाता है त्यों-त्यों घर में उसकी याद बढ़ती जाती है।

प्राचीन काल में आवागमन के कोई साधन नहीं होने से समूची यात्रा पैदल की जाती थी। इसी से वहाँ से लौटने में इतना समय लगता था कि छोटे बच्चे विवाह के योग्य हो जाते थे। और उनके बच्चे पलने में नहीं समाते थे। खासकर हिमालय की यात्रा तो पुनर्जन्म की प्रतीक होती थी। ऐसे ही तीर्थ-यात्री की याद में चलने वाले एक गीत के बोल सुनिये—

नानो सो चम्पो गंगा घर लगई आया
तेकी डाळ गई गुजरात
ते अब घर आओ तीरथ वासी।
नानो सो अम्बो गंगा घर लगई आया
तेकी कैरी लगी लटलूम
ते अब घर आओ तीरथ वासी।
नानी सी गय्या गंगा घर धरी आया
तेका जाया अक्खरनी समाय
ते अब घर आओ तीरथ वासी।
नानी सी कन्या, गंगा घर छोड़ी आया,
तेका जाया पालणां नी समाय,
ते अब घर आओ तीरथ वासी।
नानो सो पुत्र गंगा घर धरी आया,
तेका जाया पालणां नी समाय,
ते अब अब घर आओ तीरथवासी।

अर्थ—नन्हा-सा चम्पा जो तुम घर लगा गये थे
उसकी डालें अब गुजरात तक जा पहुँची हैं।
हे तीर्थवासी, अब तुम घर आ जाओ।
नन्हा-सा आम जो तुम घर लगा गये थे,
उसकी कैरियाँ अब लटलूम झूम रही हैं।
हे तीर्थवासी, अब तुम घर आ जाओ।
नन्ही-सी गैया जिसे तुम घर रख गये थे,
उसके बच्चे अब अक्खर में नहीं समा रहे हैं।
हे तीर्थवासी, अब तुम घर आ जाओ।
नन्हीं-सी कन्या जिसे तुम घर छोड़ गये थे,
उसके बच्चे अब पालने में नहीं समा रहे हैं।
हे तीर्थवासी, अब तुम घर आ जाओ।
नन्हा-सा पुत्र जिसे तुम छोड़ गये थे,
उसके बच्चे अब पालने में नहीं समा रहे हैं।
हे तीर्थवासी, अब तुम घर आ जाओ।



जब देहलीज पर्वत और आँगन परदेश हो जाता है ।

तीर्थ गये यात्री की घर में कितनी व्यग्रता से प्रतीक्षा की जाती है, इस गीत में उसका भी वर्णन सुनिये । यह गीत क्या है मानो बहिन के द्वारा भाई के आने के लिये एक भावपूर्ण आह्वान है—

ढेळ तो परवत भई रे, आंगणो भयो परदेश
म्हारा वीरा रे, तीरथऽ करी नऽ वेगा आवऽ ।
कचेरी वसन्ता थारा पिता वाटऽ जोवऽ रे
झुलवा झुलन्ती थारी माता ।
म्हारा वीरा रे, तीरथ करी नऽ वेगा आवऽ ।
गैय्या धुवन्ता थारा भाई वाटऽ जोवऽ रे,
महिया विलन्ती थारी भावज ।
म्हारा वीरा रे, तीरथ करी नऽ वेगा आवऽ ।
घोड़ीला वसन्ता थारा पुत्र वाटऽ जोवऽ रे,
रसोई करन्ती थारी बहुवर
म्हारा वीरा रे तीरथऽ करी नऽ वेगा आवऽ ।
सासर वासेण थारी बइण वाटऽ जोवऽ रे,
फुतल्या खेलन्ती थारी कन्या ।
म्हारा वीरा रे, तीरथऽ करी नऽ वेगा आवऽ ।

अर्थ—देहलीज तो पर्वत हो गई,
और आँगन हमारे लिये परदेश हो गया है ।
हे मेरे भाई, अब तुम तीर्थ करके जल्दी घर आ जाओ ।
कचहरी में बैठे तुम्हारे पिताजी बाट जोह रहे हैं
और झूला झूलती हुई तुम्हारी माँ ।

हे मेरे भाई, अब तुम तीर्थ करके जल्दी घर आ जाओ।
गैय्या दुहते हुए तुम्हारे भाई बाट जोह रहे हैं,
और महिया (छांछ) बिलाती हुई तुम्हारी भावज।
हे मेरे भाई, अब तुम तीर्थ करके जल्दी घर आ जाओ।
घोड़े पर बैठे हुए तुम्हारे पुत्र बाट जोह रहे हैं।
और रसोई करती हुई तुम्हारी बहू।
हे मेरे भाई, अब तुम तीर्थ कर के जल्दी घर आ जाओ।
ससुराल में बसने वाली तुम्हारी बहन बाट जो रही है;
और खिलौने खेलते हुए तुम्हारी कन्या।
हे मेरे भाई, अब तुम तीर्थ कर के जल्दी घर आ जाओ।

आनन्द और उल्लास के वे क्षण

अपनी लम्बी तीर्थ यात्रा के बाद यात्री जब घर लौट कर आता है तो सारे परिवार में आनन्द और उत्साह की एक लहर छा जाती है और पारिवारिक जनों की आँखों में आनन्दाश्रु छल-छलाने लगते हैं। और ऐसे में कुछ मधुर विनोद गीत भी चलते हैं। आइये, अब उनमें से भी एक का आनन्द लीजिये—

पिता कहे, बेटो गगा करी आयो,
माता कहे, बेटो दुबळो जी।
रातऽ जो दिन को माता चलणो चल्या
भुई चटई को सोवणो जी !
जव को आटो माता मनऽ नही भावऽ
उड़द्या की दालऽ चिकटी लागऽ जी।
सीधड़ा को घीव माता गधाण्यो लागऽ
यात्री की बोली पहिचाण नो आवऽ।
एतरोज सुणो गोरी, धरमऽ सी बोल्या
खिचड़ी खाई नऽ पिउजी दुबळा जी।
पैसा हमारा गोरी पगल्या तुम्हारा,
एक तीरथ गोरी तुम करो जी।

अर्थ–पिता कहते हैं—"पुत्र गंगा कर आया।"
लेकिन माता कहती है कि—"बेटा दुबला हो गया।"
इस पर पुत्र कहता है कि–"हे माँ।
रात और दिन हमें चलना पड़ा था,
और जमीन पर चटाई बिछाकर सोते थे।

जौ की रोटी हमें अच्छी नहीं लगती थी,
और उड़द की दाल चिकनी थी।
पीपे में रखा घी गन्ध करता था
और यात्रियों की बोली हमारी समझ में नहीं आती थी।
इस घर में से पत्नी कहती है कि—ऐसी बात नहीं है, हमारे पिउजी तो खिचड़ी खाकर दुबले हो गये हैं।
और तब मानो खिसियाने-से पति कह उठते हैं कि—"हे गौर वर्णा, पैसे हमारे और पाँव तुम्हारे हैं
एक तीरथ तुम भी तो कर आओ।" और चारों ओर हँसी छा जाती है।



ओंकारेश्वर ने पत्र लिखकर भेजा है।

सन्तान के लिये मनुष्य जाने कितने यज्ञ, अनुष्ठान, पूजन, हवन-व्रत और उपवास करते आया है। आधुनिक युग में "मान" उसका सरलतम स्वरूप है। जब किसी के यहाँ सन्तान नहीं होती, तो मनुष्य किसी देवी या देवता की मनौती मानता है. और इच्छित वर की प्राप्ति होने पर वह समारोह से उसकी पूजा करता आया है। ऐसे अवसर पर गाये जाने वाले गीत, निमाड़ में, "मान के गीत" के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। इन गीतों में देवी के जाज्वल्य स्वरूप, महिमा, पूजन के विधान, और पूजा करने के लिये जाने का वर्णन है।

निमाड़ में जब भी कोई मान देने के लिये जाता है, तो घूँघर-मालों से सजी गाड़ियों की धमक और स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों के बोलों से सारा रास्ता गूंज उठता है। उस समय गाये जाने वाले एक गीत के बोल हैं—

उंकार देव न लिख्या कागज दई भेज्या,
तू रे ईरा, बेगा रे घर आव्,
हम कसा आवां म्हारा उंकार देव,
हमारा माथऽ नारेळ की मान।
नारेळ चढ़ावऽ थारो माड़ी जायो,
तू रे ईरा, बेगा रे घर आव।

अर्थ–ओंकार देव ने कागज लिखकर भेजा है,
कि हे भाई, तू शीघ्र आ।
हम कैसे आयें, हे ओंकार देव!
हमारे तरफ़ नारियल की मान बाकी है।
नारियल तेरा सहोदर भाई चढ़ा देगा,
हे भाई! तू शीघ्र आ।

जो सफेद घोड़े पर सवार है

इस गीत में, मान देने के लिये जाते समय की अवस्था और देवता के स्वरूप का वर्णन है—

गाड़ा जुप्या रे, देव, गाडुला
नांदिया घुघर माळ,
धवळा घोड़ा को रे म्हारो उंकार देव,
तुम पर उड़ऽ रे निशाण,
आवऽ तेखऽ रे देव, आवणऽ दीजो,
आड़ी नारेळ की पाळ।

अर्थ—गाड़ियाँ जोतीं और हे देव! गाड़े भी जोते गये।
और बैलों के गले से घूंघर-मालें बाँधी गई हैं।
सफेद घोड़े पर मेरे उंकार देव बैठे हैं।
और उन पर निशान उड़ रहा है।
हे देव! जो आवें, उन्हें आने देना,
मै तुम्हें नारियल की आड़ी पाल चढाऊँगा।



जिसके यहाँ स्वयम् देवता मेहमान होते हैं।

इस गीत में स्वयम् देवता के, मनौती मानने वाले भाई पर प्रसन्न होकर, उनके घर मेहमान बनकर आने का वर्णन है—

पानड़ पानड़ दिया बळऽ,
थारा दिवलड़ा की लागी जगाजोत रे,
आज म्हारा घर ओंकार देव पावणो।

ओंकार देव की मैया पूछऽ वातूली,
तू खऽ आज कूणऽ निवत्यो पूत रे,
आज म्हारा घर ओंकार पावणो।

मखऽ निवत्यो छे, अमुक भाई की माय,
जिमाड़या छे दही अरु भात रे।
आज म्हारा घर ओंकार देव पावणो।

अर्थ—पत्ते-पत्ते पर दिये जल रहे हैं
तुम्हारे दियों की जगमग जोत लगी है,
आज मेरे यहाँ ओंकार देव मेहमान हैं।
तेरे को आज किसने निमन्त्रण दिया, ओ मेरे पुत्र,
मुझे अमुक भाई की माँ ने निमन्त्रण दिया है,
और दही—चावल का भोजन कराया है।
आज मेरे यहाँ ओंकार देव मेहमान हैं।



देवी का सन्तानदाता स्वरूप

इस गीत में देवी के सन्तानदाता स्वरूप का वर्णन किया गया है—

नानो सो बावेसरो लहलहऽ,
जाई बठी नरबदा पाळ,
देवी पूजता अमुक भाई,
मांगणु होय सो मांग,
तुम्हारो दियो देवी सब कई छे,
भर्‍यो छे अखण्ड भण्डार,
एक दीजे हो बाळो लहलहऽ,
कळु मंऽ रहे थारो नांव।

अर्थ—नन्हीं बाघेश्वरी माता,
नर्मदा की पाल पर बैठी थी।
बोली—"हे देवी को पूजन वाले अमुक भाई,
तुम्हें जो माँगना हो सो माँग लो।
वे बोले—"देवी, तुम्हारा दिया हुआ हमारे यहाँ सब कुछ है,
हमारा भण्डार भी भरा-पूरा है,
लेकिन, हे देवी, एक लहलहाता हुआ बच्चा दे दो.
तो कलियुग मे तुम्हारा नाम रहेगा।"



कैसा है तुम्हारा मोठा निमाड़?

जिस तरह मनुष्य देवताओं से प्यार करता है, इसी तरह देवता भी मनुष्य से प्यार करते आये हैं। [illegible] के गीत में इसी भाव को व्यक्त करते हुए निमाड़ का वर्णन सुनिये—

हाथऽ आरती हो, बाघेसरी ठाड़ा रह्या,
जोवऽ ते पोहा की बाट,
गढ़ रे गुजरात पोहो सबई आयो,
नहीं आई म्हारी भोळई निमाड़।
भोळई निमाड़ का रे अमुक भाई,
काहे मंऽ रहया बिलमाय ?
कसोक छे रे देवी थारो मानवई
कसीक छे रे निमाड़,
कालो घोड़ो रे खुर बाटळो
पातळियो छे असवार,
कांधऽ खड़ियो, रे हाथऽ लाकड़ो,
मोठा जी भाई, जै बोलता आवऽ
ज्वार रे तोर को रे, देवी म्हारो घावणो,
माया मंऽ रह्यो बिलमाय !

अर्थ—हाथ में आरती लेकर देवी खड़ी है,
और खड़े होकर मेहमानों की बाट जोह रही है।
गुजरात के गढ़ से सब लोग आ गये,
लेकिन मेरे भोले निमाड़ के लोग अभी तक क्यों नहीं आये ?
ओ मेरे भोले निमाड़ के अमुक भाई !
तुम किस बात में लुभाकर रुके हुए हो ?

इस पर एक आदमी पूछता है—
हे देवी ! तुम्हारी यह भोला निमाड़ कैसी है ?
और कैसे हैं वहाँ के लोग ?

वे बताती हैं—

एक गोल खुरवाले काले घोड़े पर,
एक पतला-सा सवार बैठा है।
उसके कांधे पर रूड़िया, और हाथ में लकुटी है,
और वह जय बोलता हुआ आ रहा है।

आते ही वह कहता है—

हे देवी! मुझे ज्वार और तूवर निकालने थे,
इसी से मुझे आने में देर हो गई!



"बेहुला गाय" नामक लोक-प्रसिद्ध भावपूर्ण गीत

इस गीत की यह विशेषता है कि यह देश के विभिन्न प्रान्तों में एक जैसी शैली में प्रचलित रहा है। इसमें हिंसक सिंह पर अहिंसक गाय की विजय का अत्यन्त ही करुण चित्रण है—

बिन्द्रा जो वन की, चरती जो गाय,
सारो बिन्द्रावन चरी आई जी।
पहिलो हम्मर गउआ काकड़ मऽ दियो,
दूसरो हम्मर गउआ घोह्या का मांही।
तीसरो हम्मर गौआ पनघट पर दीयो,
चौथो हम्मर गौआ सेरी का मांही।
पांचवो हम्मर गोआ दीयो आगण का मांही॥
पेवो-पेवो रे बछुआ, सवा घड़ो दूध,
आज को दूध बछआ दोयलो जी।
रोज चरता था बछुआ मधुवन मऽ,

आज गया वछुआ जगल मऽ।
जगल मंऽ रे बछुआ न्हार को डर,
न्हार खऽ भेटी नऽ आईज घर।
आज को दूध बछुआ दोयलो ॥

अर्थ—वृन्दावन में चरनेवाली गाय आज सारा वृन्दावन चर आई है।
पहली पुकार उसने गाँव की सरहद पर दी,
और दूसरी पुकार उसने गोहे पर लगाई,
तीसरी पुकार उसने पनघट पर दी,
और चौथी पुकार उसने अपने गाँव की गली में लगाई,
तथा पाँचवीं पुकार मे वह घर के आँगन में आ पहुँची।
और अत्यन्त ही व्यग्रता से बोली—हे बच्चे! पियो, आज
तुम मेरा सवा घड़ा दूध पी लो।
आज का दूध बहुत दुर्लभ है।
हे बछुए, रोज मै मधुवन में चरती थी,
आज जंगल में चली गई।
हे बछुए, जंगल में शेर का डर है,
और आज मैं शेर से मिलकर आ रही हूँ,

बात यों होती है कि जंगल में गाय शेर के पंजे में पड़ जाती है। अपनी मृत्यु निकट जान, गाय एक शर्त पर शेर से घर हो आने की अनुमति चाहती है। वह कहती है—'मेरा नन्हा सा बछुआ घर है। वह मेरी प्रतीक्षा में होगा। वह दिन भर का भूखा होगा। मैं घर जाकर उसे समझा आऊँ और आज का दूध पिला आऊँ। फिर तुम खुशी से मेरा मांस भक्षण कर लेना।' शेर उसकी बात मान लेता है और उसे घर हो आने की अनुमति दे देता है।

और, गीत चलता है—

पड़ोसेण बाई तू म्हारी माय,
म्हारा बछुश्रा खऽ जतन सी राख,
ऊंढाळा मंऽ श्रो बैण, छावळा मऽ बांधजे,
ठण्डो-सो नीर पेवाड़जे।
बरसात मऽ ओ बैण, श्रासरा मंऽ बांधजे,
हरयाळई दूब खवाडजे।
श्रागऽ लग्यो बछुश्रो नऽ पाछऽ लगो गाय,
दुई मिली नऽ जगल म जाय।
'भखो, भखो, मामाजीऽ पहिलऽ म्हारो मांस,
फिर भखो म्हारी मांय को माँस।'
'कुणनऽ दीयो रे बछुआ सीख नऽ बोध,
कहां का पण्डित नऽ पढ़ावीयो।
'राम नऽ दी मखऽ सीख नऽ बोध,
रामजऽ पण्डित पढ़ावीयो।
'जाओ, जाश्रो, बईण, भाणिज अपणाज घर,
आज तुमनऽ मखऽ जीती लियो जी।'

सिंह से अनुमति लेकर दौड़ती हुई और हम्मर करती हुई गाय घर आती है और बच्चे को दूध पिलाकर कहती है—'हे पड़ोसिन बहिन! तुम मेरी माँ के समान हो। मेरे बच्चे को संभाल कर रखना। देखो, गरमी में इसे छाँह में बाँध देना और ठण्डा-सा पानी पिला दिया करना। और सुनो, इसे बरसात में आसरे में बाँध देना और हरियाली दूब खिला दिया करना।'

उधर बच्चा भी सारी स्थिति समझ जाता है। माँ के बिना वह कैसे जीवित रह सकता है? अतएव मृत्यु का आलिंगन करने

के लिये दोनों साथ हो लेते हैं। सृष्टि का वह कैसा क्षण था, जब हिंसक सिंह के मुँह में जाने के लिये अहिंसा की सजीव मूर्ति 'गाय और बछुआ'—'माँ और बच्चा' एक साथ अपने आप जा पहुँचते हैं।

अर्थ—आगे-आगे बच्चा चलता है, और पीछे-पीछे माँ दौड़ती है। दोनों मिलकर जंगल में जा रहे है।

इस बीच बच्चे को एक युक्ति सूझती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की तरह जंगल के जितने जीव हैं, वे सब परस्पर भाई-बहिन हुए। अतएव वह जंगल के रिश्ते से सिंह को 'मामाजी' कहकर पुकार उठता है। मानो वह सिंह की सम्पूर्ण हिंसा की 'थाह' ले लेना चाहता है!

अर्थ—वह कहता है—'हे मामाजी! खाओ, खाओ, पहले मेरे माँस को खाओ,
फिर मेरी माता के माँस का भक्षण करना।
सुनते ही सिंह सिहर उठता है। कहता है—
हे बछुए! तुझे किसने यह ज्ञान और बोध दिया?
और किस पण्डित ने यह पाठ पढ़ाया है?

बछुआ कहता है—

राम ने मुझे यह ज्ञान और बोध दिया,
और 'राम' पण्डित ने ही मुझे यह पाठ पढ़ाया है।

इस पर सिंह कहता है—
जाओ, जाओ, हे बहिन! और हे भानेज! तुम अपने घर जाओ।
आज तुमने मुझे जीत लिया है!!

—※—